निर्माण IAS

Give the best.... Take the best

चलते-चलते
पढ़ले रे भैया

राजस्थान लोक सेवा मुख्य परीक्षा

सामान्य अध्ययन

प्रश्न पत्र-1 [UNIT-1]
HISTORY

निर्माण IAS द्वारा प्रश्न पत्र-2 एवं 3 हेतु भी इसी प्रकार की पाठ्य सामग्री दी जायेगी उसे भी अवश्य प्राप्त करें।

जयपुर

M-85, महेश कॉलोनी, जे.पी.फाटक अंडरपास, जयपुर
मो. 0141-2597631, 09680513367-68

सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-1

पुनर्जागरण

पुनर्जागरण (रेनेसाँ) एक फ्रेंच शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ है- 'फिर से जागना।' इसे ''नया जन्म'' अथवा ''पुनर्जन्म'' भी कह सकते हैं परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से इसे मानव समाज की बौद्धिक चेतना और तर्कशक्ति का पुनर्जन्म कहना ज्यादा उचित होगा। कुछ विद्वान् इस शब्द का प्रयोग यूनान और रोम की प्राचीन सभ्यता के ज्ञान-विज्ञान के प्रति फिर से पैदा हुई रूचि के लिए करते है। मध्यकाल में यूरोपवासियो पर चर्च तथा सामन्तों का इतना अधिक प्रभाव बढ़ गया था कि वे प्राचीन ज्ञान-विज्ञान के साथ-साथ लेटिन और यूनानी भाषाओ को भी लगभग भूला बैठे थे। शिक्षा का प्रसार रूक गया था। परिणामस्वरूप सम्पूर्ण यूरोप सदियो तक गहन अन्धकार मे डूबा रहा। धर्मशास्त्रो मे जो कुछ सच्च-झूठा लिखा था अथवा चर्च के प्रतिनिधि जो कुछ बतलाते थे उसे पूर्ण सत्य मानना पड़ता था। विरोध करने पर मृत्यु-दण्ड दिया जाता था।

मध्ययुग के अन्त मे यूनानी और लेटिन भाषाओं मे निहित ज्ञान को पुन: प्रतिष्ठित करने तथा नये ज्ञान को अर्जन के प्रयत्न किये गये। इसके परिणामस्वरूप यूरोप के लोगों के जीवन एवं उनकी विचारधारा मे एक महान् परिवर्तन आ गया। मनुष्य ने अपने आपको तथा अपनी उपलब्धियों को पहचानना शुरू किया। परलोक के स्थान पर इहलोक को, धार्मिक समस्याओं के स्थान पर सांसारिक समस्याओं को और स्वर्ग-नरक के स्थान पर राष्ट्र को प्रधानता देने लगा। फिर भी, पुनर्जागरण न तो राजनीतिक आन्दोलन था और न ही धार्मिक आन्दोलन। यह तो मानव-मस्तिष्क की एक विचित्र जिज्ञासापूर्ण स्थिति थी जिसके परिणामस्वरूप जीवन के प्रति मध्यकालीन दृष्टि से उसका मोहभंग हो गया। इसी को इतिहास में 'नवयुग' 'बौद्धिक पुनरूत्थान' आदि नामों से पुकारा जाता है।

पुनर्जागरण की विशेषताएँ

1. पुनर्जागरण की प्रमुख विशेषता **स्वतन्त्र चिन्तन** है। मध्ययुग में स्वतंत्र चिन्तन पर धर्म का अंकुश लगा हुआ था। पुनर्जागरण ने आलोचना को नई गति एव विचारधारा को नवीन निड़रता प्रदान की। उसका लक्ष्य परम्परागत मान्यताओं एवं विचारों को स्वतंत्र आलोचना की कसौटी पर कसकर उसकी प्रमाणिकता की जाँच करना तथा वैज्ञानिक ढंग से व्याख्या करना था।
2. दूसरी विशेषता मनुष्य को अन्धविश्वासों, रूढ़ियों तथा चर्च द्वारा आरोपित बन्धनों से छुटकारा दिलाकर उसके **व्यक्तित्व का स्वतन्त्र रूप से विकास** करना था।
3. तीसरी विशेषता **मानववादी विचारधारा** थी। मध्ययुग में चर्च ने लोगों को उपदेश दिया था कि इस संसार मे जन्म लेना ही घोर पाप है। अत: तपस्या तथा निवृत्ति मार्ग को अपनाकर मनुष्य को इस पाप से मुक्त होने का सतत् प्रयास करना चाहिए। इसके विपरीत पुनर्जागरण ने मानव-जीवन को सार्थक बनाने की शिक्षा दी। धर्म एवं मोक्ष के स्थान पर मानव-जीवन को और अधिक सुखी एवं समृद्ध बनाने का संदेश दिया। पुनर्जागरण ने पारलौकिक कल्पना के स्थान पर यथार्थवादी संसार की समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित किया।
4. चौथी विशेषता **देशज भाषाओं का विकास** थी। अब तक केवल यूनानी और लेटिन भाषाओं मे लिखे गये ग्रन्थों को ही महत्वपूर्ण समझा जाता था। पुनर्जागरण ने लोगों को बोलचाल की भाषा को गरिमा एवं सम्मान दिया क्योकि इन भाषाओं के माध्यम से सामान्य लोग बहुत जल्दी ज्ञानार्जन कर सकते थे। अपने विचारों को सुगमता के साथ अभिव्यक्त कर सकते है।
5. **चित्रकला** के क्षेत्र में पुनर्जागरण की विशेषता थी- यर्थार्थ का चित्रण, वास्तविक सौन्दर्य का अंकन। इसी प्रकार, विज्ञान के क्षेत्र मे पुनर्जागरण की विशेषता थी- निरीक्षण, अन्वेषण, जाँच और परीक्षण। इस वैज्ञानिक भावना ने मध्ययुगीन अन्धविश्वासों को अस्वीकार करके तर्क एवं चिन्तन शक्ति का विकास किया।

पुनर्जागरण के कारण

पुनर्जागरण किसी एक व्यक्ति, एक स्थान, एक घटना, एक विचारधारा अथवा आन्दोलन के कारण सम्भव नही हो पाया था। इसके उदय एवं विकास में असंख्य व्यक्तियो के सामूहिक ज्ञान एवं विविध देशों की विभिन्न परिस्थितियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। फिर भी, निम्न कारणों को इसके लिए उत्तरदायी माना जा सकता है-

1. **धर्मयुद्ध (क्रूसेड**
2. **व्यापारिक समृद्धि**
3. **धनी मध्यम वर्ग का उदय**
4. **अरब और मंगोल**
5. **स्कालिष्टिक विचारधारा**
6. **कागज और छापाखाना**
7. **कुस्तुनतुनिया पर तुर्को का अधिकार**

पुनर्जागरण के परिणाम

पुनर्जागरण के परिणाम महत्वपूर्ण एवं दूरगामी सिद्ध हुए। इसके कारण यूरोपवासियो के जीवन मे आमूल परिवर्तन आ गया। मध्यकालीन मान्यताओं एवं अन्धविश्वासों का अन्त हुआ और आधुनिक युग का प्रारम्भ हुआ। इसके कुछ महत्वपूर्ण परिणाम इस प्रकार रहे-

1. **विचार-स्वातंत्र एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण**
2. **भौतिकवादी दृष्टिकोण का विकास**
3. **राष्ट्रीयता का विकास**
4. **धर्मसुधार की पृष्ठभूमि का निर्माण**
5. **उन्नत पाठ्यक्रम**
6. **अन्य परिणाम-** पुनर्जागरण ने यूरोप के लोगों मे प्राचीन संसार के जीवन-मूल्यो तथा आदर्शो के प्रति जिज्ञासा एवं सम्मान की भावना उत्पन्न की। पुनर्जागरण का एक परिणाम देशज भाषाओ एवं उनके साहित्य के विकास के रूप में सामने आया। इसी प्रकार कला के क्षेत्र मे भी नई शैलियों का विकास हुआ। पुनर्जागरण ने इतिहास के अध्ययन को भी प्रभावित किया। अब इतिहास का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन किया जाने लगा। धर्मसुधार आन्देलन के साथ-साथ औद्योगिक क्रान्ति की पृष्ठभूमि का निर्माण करने का श्रेय भी पुनर्जागरण को ही है। भौगोलिक अनुसंधानों के परिणामस्वरूप शेष दुनिया की जानकारी मिली। उपनिवेशवाद और साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिला। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार-वाणिज्य का विकास हुआ। उद्योग-धन्धो का विकास हुआ और बढ़ती हुई मांग को पूरी करने के लिए औद्योगिक क्रान्ति का सूत्रपात हुआ।

प्रोफेसर मानफ्रेद के अनुसार यह महान् वैज्ञानिक खोजों का युग भी था। विश्व के प्रति मानवतावादियों का दृष्टिकोण आनुभविक-प्रयोगाश्रित था। आधुनिक विज्ञान की अनेक शाखाओं की नीवं इस युग के वैज्ञानिकों ने ही डाली थी, जैसे- प्रकृति, यांत्रिकी, खगोल, शरीर रचना और शरीर क्रिया विज्ञान और प्रकृति की भौतिकवादी व्याख्या।

इस प्रकार हम देखते है कि पुनर्जागरण एक उदार सांस्कृतिक आन्दोलन था जिसने कला, साहित्य, विज्ञान, व्यापार एवं व्यवसाय, धर्म और शासन मे बड़े परिवर्तनों के लिए मार्ग तैयार किया। इस मार्ग पर चल कर ही मानव अपनी आधुनिक सभ्यता एवं संस्कृति का निर्माण करने में सफल हो पाया है। इस दृष्टि से पुनर्जागरण मानव सभ्यता के इतिहास मे एक मोड-बिन्दु कहा जा सकता है।

धर्मसुधार आंदोलन

पंद्रहवीं शताब्दी मे रोमन कैथोलिक धर्म मे व्याप्त भ्रष्टाचार एवं कुरीतियों क विरूद्ध एक सुधारवादी आंदोलन उठ खड़ा हुआ और अंततोगत्वा उसका विभाजन हो गया। अनेक देश रोमन कैथोलिक चर्च से अलग हो गये और उन देशों मे सामान्यत: राष्ट्रीय स्तर पर पृथक चर्चो की स्थापना हुई। इससे प्रभावित होकर कैथोलिक धर्म में भी सुधार हुए जिसे प्रतिधर्मसुधार के नाम से जाना जाता है। उपर्युक्त दोनों

परिवर्तनों के लिए ''धर्मसुधार आंदोलन'' शब्द का प्रयोग किया जाता है। धर्म के क्षेत्र मे जो जन आंदोलन चला उसका प्रारम्भिक ध्येय रोमन कैथोलिक चर्च मे विद्यमान बुराइयों को दूर करके धर्म मे सुधार करना था। परंतु बाद में प्रारम्भिक ध्येय बदल गया और संशोधन के स्थान पर नये धर्म की स्थापना हुई।

कारण

धर्मसुधार आंदोलन महज एक धार्मिक आंदोलन नही था। इसका उस समय के सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों से भी गहरा संबंध था। जिन्होने मध्ययुग का अन्त करके आधुनिक युग की नींव रखी थी। इस आंदोलन के प्रमुख कारण अग्रलिखित थे-

-**पुनर्जागरण का प्रभाव**
-**चर्च की आंतरिक कमजोरियाँ**
-**व्यापारी वर्ग का विरोध**
-**राजनीतिक कारण**

पोप और राजाओं के मध्य संघर्ष का मुख्य कारण चर्च की धन-सम्पदा थी। चर्च के पास बहुत अधिक भूमि थी और इस भूमि से होने वाली उपज पर उसे किसी प्रकार का राजकीय कर नही देना पड़ता था। चर्च लोगों से धार्मिक कर भी वसूल करता था। धार्मिक न्यायालयों से भी चर्च को आय होती थी। श्रद्धालू ईसाइयों से भी चर्च को काफी धन मिलता रहता था। कुल मिलाकर चर्च काफी समृद्ध था और उसके अधिकारी भोग-विलास तथा ऐश्वर्य का जीवन बिताते थे। दूसरी तरफ राजाओं को प्रशासनिक कार्यो तथा सैन्यशक्ति के विकास के लिए धन की सख्त आवश्यकता थी। इसलिए राजाओं ने धर्मसुधारकों को सहयोग एवं संरक्षण प्रदान किया ताकि पोप के वर्चस्व के समाप्त होते ही वे अपने स्वार्थो को पूरा कर सके। डी.जे. हिल ने लिखा है, ''यदि प्रोटेस्टैन्ट आंदोलन केवल धार्मिक आंदोलन ही होता तो यह अपने सृजनकर्त्ताओं के जीवनकाल तक भी न पनप पाता। जिस बात ने इसे सफल बनाया, वह थी इसके राजनीतिक उद्देश्य तथा प्रभाव और विशेषकर कूटनीति।''

-**तत्कालीन कारण**

धर्मसुधार आंदोलन का तत्कालीन कारण मार्टिन लूथर द्वारा ''इंडलजेन्स'' (पाप-विमोचन-पत्र) का विरोध करना था। इंडलजेन्स एक ऐसा मुक्तिपत्र था जिसको धन द्वारा खरीदा जा सकता था और इस पत्र को खरीदने वाले के लिए पोप का यह आश्वासन था कि उसके पाप धुल जायेगे।

धर्मसुधार आंदोलन के परिणाम

- ईसाई एकता का अन्त
- धार्मिक संघर्षो की शुरूआत
- धार्मिक सहिष्णुता का उदय
- नैतिकता और शिष्टता
- शिक्षण संस्थाओं का विकास
- राजाओं की शक्ति का विकास
- लोक साहित्य का विकास
- धर्मनिरपेक्षता का विकास

प्रबोधन या ज्ञानोदय का युग
(Age of Enlightenment)

वैज्ञानिक आविष्कारों और अनुसंधानों के कारण न केवल विज्ञान के क्षेत्र में, बल्कि धर्म, राजनीति, अर्थव्यवस्था आदि अनेक मानवीय क्षेत्रों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का उदय हुआ। इस वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर विकसित दार्शनिक या वैचारिक क्रांति को **प्रबोधन या ज्ञानोदय** कहते हैं। 17वीं और 18वीं शताब्दी इस बौद्धिक क्रांति का युग माना जाता हैं। यों तो अनेक दर्शनिकों ने प्रबोधन के दर्शन में अपना योगदान दिया, किन्तु तीन नाम सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं- रेने, देकार्त, जान लॉक और वाल्तेयर।

देकार्त (1596-1650) गणित का अग्रदूत होने के साथ-साथ वैज्ञानिक सिद्धांतों और प्रणाली-विज्ञान (Methodology) पर मनन करने और लिखने वाला पहला व्यक्ति था। डिसकोर्स ऑन मेथड (Discourse on Method) नामक उसकी पुस्तक वैज्ञानिक दृष्टिकोण के उदय में सीमाचिन्ह् (Landmark) मानी जाती हैं। यह पुस्तक निरपेक्ष तर्क का प्रबल समर्थक है। देकार्त विवेक और तर्क के द्वारा किसी को भी चुनौती दे सकता था, भले ही वह अरस्तु और बाइबिल की तरह आदरणीय क्यों न हो। चीर-फाड़ के लिए लाए गए चूहों के बक्से की ओर इंगित करते हुए उसने कहा कि यही मेरी पुस्तकें हैं। वह कुछ सरल और स्वयं सिद्ध सत्यों के आधार पर निगमनात्मक विवेचना के द्वारा आगे के सत्यों को सिद्ध करता था। वह कहता था कि **'मैं सोचता हूँ, इसीलिए मैं हूँ।'** उसका विश्वास था कि गति और विस्तार (Motion and Extension) द्वारा समूचे भौतिक दुनिया को समझता जा सकता हैं। उसने विवेक को सत्य का आधार मानकर और दुनिया को बिल्कुल यांत्रिक मानकर परंपरागत मान्यताओं को चुनौती दी। इस प्रकार, देकार्त ने ईश्वरीय अभिव्यक्ति और ईश्वरीय विधान की इसाई मान्यताओं को चुनौती दी।

जान लॉक (1632-1704) देकार्त से भी आगे बढ़ गये। देकार्त ने तो कम से कम मस्तिष्क और आत्मा को गति और विस्तार के नियमों से परे माना था। लॉक ने तो मानव-मस्तिष्क को भी यांत्रिक नियमों से परे नहीं माना। Essay Concerning Human Understanding नामक अपनी पुस्तक में लॉक ने बताया कि मनुष्य का मस्तिष्क पैदा होने के समय एक सफेद कागज के समान होता है जिस पर कुछ भी अंकित नहीं होता। बाद में ज्ञानेंद्रियों और विवेक के कारण मस्तिष्क पर कुछ छाप पड़ती हैं। टेबुलारासा (Tabularasa) के इस सिद्धांत ने जन्मजात विचारों के सिद्धांतों को नकार दिया। इस प्रकार, सम्पूर्ण विश्व का यंत्रीकरण पूरा हुआ। लॉक पहला व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक था। देकार्त के बुद्धिवाद का आधार था विवेक द्वारा सत्य की खोज। लेकिन लॉक अनुभववादी था जो ज्ञान की खोज अवलोकन और अनुभव के द्वारा करता था। दोनों ने ही ईश्वरीय रहस्योद्घाटन और सत्ता को मानने से इंकार कर दिया। इस प्रकार, दोनों ने प्रबोधन के दर्शन में अपना भारी योगदान दिया।

प्रबुद्धवाद के प्रमुख दार्शनिकों में सबसे प्रभावशाली **वाल्तेयर** (1698-1778) था। उसकी कौशलपूर्ण लेखनी ने लॉक के मौलिक एवं गंभीर विचारों को लोकप्रिय बनाया। उसका बहुमुखी दिमाग चिंतनशील था और उसकी बुद्धि अत्यंत तेज और प्रखर थी। जन्म से संदेही और आलोचक इस व्यक्ति ने राज्य और चर्च की सत्ता को चुनौती दी। उसने विशेषकर चर्च को अपनी आलाचेना का लक्ष्य बनाया। शायद ही किसी व्यक्ति ने बौद्धिक रूप से अपने जमाने को उतना प्रभावित किया हो, जितना कि वाल्तेयर ने 18वीं सदी को किया था। उसने कविता, नाटक, इतिहास, लेख, पत्र और वैज्ञानिक विश्लेषण के रूप में नब्बे ग्रंथों की रचना की और इनके माध्यम से तत्कालीन बुराईयों का पर्दाफाश किया। वाल्तेयर और उसके सहयोगी दार्शनिकों के लेखों का साहित्यिक रूप जो भी हो, वे भौतिकवादी बुद्धिवाद या प्रबुद्धवाद से परिपूर्ण थे। **इस प्रबुद्धवादी दर्शन या प्रबोधन की निम्नलिखित विशेषताएँ -**

अनुभूतिमूलक ज्ञान (Empirical Knowledge)- हम जो भी जानते हैं या जान सकते हैं उसका एकमात्र स्त्रोत ज्ञानेन्द्रियों हैं तथा विवेक द्वारा उसकी व्याख्या हो सकती है। जन्मजात विचार और ईश्वरादिष्ट सत्य नाम की कोई चीज नहीं हैं।

यांत्रिक बह्मांड (Mechanistic Universe)- सारी सृष्टि और मानव सहित इस सृष्टि की सारी चीजें कुछ सरल और अपरिवर्तनशील नियमों द्वारा संचालित होती हैं। अगर कोई यह सोचता हैं कि वह इन नियमों में परिवर्तन कर सकता हैं तो वह अपने आपको धोखा दे रहा हैं और अपने झूठे अहंकार का शिकार हैं।

मनुष्य की अच्छाई (Goodness of Man)-मनुष्य स्वभाव से विवेकशील और अच्छा है, लेकिन रहस्यात्मक धर्म के व्यापारियों ने उसके विचारों को तोड़-मरोड़ दिया है और मौलिक पाप और ईश्वरीय नैतिक नियमों के झूठे सिद्धांतों का प्रचार करके उसमें दोष-ग्रन्थि पैदा कर दी हैं। यदि मनुष्य अपने दिमाग से इस कूड़ा-करकट को निकाल दे तो वह अपने लिए एक आदर्श समाज बना सकता हैं।

प्रकृति की अच्छाई (Goodness of Nature)- प्रकृति अपने सरल रूप में उत्तम और सुन्दर है। मनुष्य ने अपने जटिल सामाजिक और आर्थिक प्रतिबंधों के द्वारा इसे भ्रष्ट बना दिया है। प्रकृति की ओर लौट चलना हितकर उत्साह और स्वतंत्रता की ओर लौटना होगा।

देववाद (Deism)- सृष्टि या विश्व कहा जाने वाला यह आश्चर्यजनक तंत्र किसी संयोग का परिणाम नहीं हो सकता। किसी अनन्त दैवी शक्ति ने इसे बनाया और अग्रसर किया होगा। फिर भी मनुष्य का सीमित मस्तिष्क इस अनंत को नहीं जान सकता, अर्थात् ईश्वर ज्ञानातीत है। अपने आदर्श यांत्रिक नियमों को संचालित करने के बाद ईश्वर न तो इन नियमों में और न मनुष्य के मामले में कभी हस्तक्षेप करेगा। वह अवैयक्तिक है।

पूरी पश्चिम दुनिया के बुद्धिजीवियों ने 18वी शताब्दी में इन सिद्धांतों को स्वीकार किया। वाल्तेयर और अन्य फ्रांसीसी दार्शनिकों की सहायता से **दिदरों** ने एक विश्वकोष का निर्माण किया। इन विशाल पुस्तक में ज्ञान के सारे भंडार को समेटने का प्रयास किया गया। इस पुस्तक में विवेकवादी और अनुभववादी विचारों की झलक मिलती हैं।

प्रबुद्धवादी दार्शनिकों से थोड़ा अलग एक और दार्शनिक था जिसका प्रभाव शायद केवल वोल्तेयर से ही कम था। वह था **रूसो (1712-78)**। वह इतिहास के मौलिक चिन्तकों और आकर्षक लेखकों में एक था जिसने एक सुन्दर, निष्कलंक और सरल प्रकृति की ओर लौट चलने के लिए जिहाद छेड़ा। स्वेच्छाचारी और भ्रष्ट नौकरशाही तथा सामाजिक शिष्टाचार के कठोर बनावटीपन एवं जटिल नियमों से पीड़ित समाज ने रूसों के विचारों का स्वागत किया। रूसों ने प्रबुद्धवादी दार्शनिकों के अनेक विचारों जैसे देववाद, यांत्रिक विश्व, मनुष्य एवं प्रकृति के अच्छाईपन पर सहमति व्यक्त की। लेकिन, बुद्धि और विवेक के बारे में उसके विचार बिल्कुल भिन्न थे। रूसों ने मनोभाव, भावना और अंतर्दृष्टि पर जोर दिया, न कि शुद्ध विवेक पर। इस दृष्टिकोण से वह रोमाण्टिक भावना का अगुआ था जिसके सिद्धांतों की व्याख्या सौ साल बाद हुई। उसने कहा कि मनुष्य स्वतंत्र और निष्कलंक पैदा होता है, परन्तु समाज उसे भ्रष्ट बना देता हैं। इसलिए मनुष्य को समाज के बनावटी बन्धनों को तोड़ कर प्राकृतिक अवस्था की ओर लौट जाना चाहिए।

प्रबुद्धवाद के दर्शनिकों और ईसाई धर्मशास्त्रियों के बीच संघर्ष :- यह स्पष्ट है कि प्रबोधन का विचार ईसाई चर्च के सिद्धांतों से बिल्कुल भिन्न था। देववादियों के अवैयक्तिक और ज्ञानातीत ईश्वर के विपरीत ईसाई धर्मशास्त्रियों ने यह बताया कि ईश्वर मनुष्य का रूप लेता है और ईसा मसीह के रूप में उसने अपने को प्रकट किया। ईसाई धर्मशास्त्री यह कहते थे कि ईश्वर अपने सारे विशिष्ट जीवों में दिलचस्पी रखता है। एक चिड़िया के जीवन की भी वह चिन्ता करता है। भौतिकवादी बुद्धिजीवियों के अनुभवगम्य ज्ञान के जवाब में ईसाई धर्मशास्त्रियों ने कहा कि ईश्वर ईसा, बाइबिल, चर्च के किसी महात्मा, अवतारी पुरूष या सामान्य ईसाई के माध्यम से अपने को प्रकट करता है। उन्होनें यह भी कहा कि प्रार्थना का जवाब ईश्वर देता है। चमत्कार के पीछे कोई तर्क नहीं होता। उन्होंने तर्क दिया कि अगर ईश्वर इस यांत्रिक दुनिया के नियमों को बना सकता हैं तो निश्चित रूप से इसे इच्छानुसार बदल भी सकता हैं। ईसाई धर्मशास्त्रियों ने मनुष्य के अच्छाई के सिद्धांत को गलत बताते हुए कहा कि मनुष्य एक पतित प्राणी है और एडम के पापों का फल हैं। कुछ ईसाई धर्मशास्त्रियों ने तर्क दिया कि प्रबुद्धवाद का दर्शन भी अपने-आप में विश्वास पर आधारित एक धर्म है। यह कभी भी सिद्ध नहीं किया जा सकता। कि मनुष्य प्राकृतिक रूप से अच्छा है या वह धरती पर स्वर्ग का निर्माण कर लेगा। 18वीं सदी का यह वैचारिक मतभेद गहराता ही गया। प्रबुद्धवादी दार्शनिकों और बुद्धिजीवियों को सफलता मिली और पादरियों का पतन हुआ। फ्रांस की क्रांति पर इस विचारधारा का काफी प्रभाव था।

प्रबुद्धवाद के राजनीतिक एवं आर्थिक पहलू :- प्रबुद्धवाद के दर्शनिकों ने सरकार संबंधी बातों पर काफी विचार किया। अगर मनुष्य स्वभाव से विवेकशील और भला है तो मौका मिलने पर वह निश्चित रूप से अपने लिए एक सक्षम और परोपकारों राजनीतिक संस्था का निर्माण कर सकता हैं। भ्रष्ट निरंकुशतंत्र अब असह्य हो गए। **राजनीतिशास्त्र के क्षेत्र में अनेक प्रबुद्ध चिन्तकों में तीन का प्रभाव अधिक माना जाता है वे थे-लॉक, मान्टेस्क्यू और रूसों।** लॉक ने मनुष्य के प्राकृतिक अधिकारों जीवन, स्वतंत्रता और सम्पत्ति के अधिकार-का जोरदार पक्ष लिया। Two Treatises of Civil Government नामक अपनी पुस्तक में उसने यह सिद्धांत प्रतिपादित किया कि मनुष्य ने इस अधिकारों की रक्षा के लिए स्वेच्छा से अनुबंध करके अपनी संप्रभुता का कुछ अंश सरकार को समर्पित कर दिया है। सरकार, चाहे राजतंत्रीय हो या लोकतंत्रीय के अधिकार निश्चित तथा सीमित होते हैं। कोई भी सरकार व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता और सम्पत्ति के अधिकारों का उल्लंघन नहीं कर सकती। अगर वह ऐसी करती है तो जिन लोगों ने इसे स्थापित किया है वे इसे उखाड़ फेंक सकते हैं। अमेरिकी और फ्रांसीसी क्रान्ति के नेताओं पर इस विचार का गहरा प्रभाव था। जेफरसन ने 'स्वतंत्रता की घोषणा' में लॉक के कई विचारों को अक्षरश: शामिल किया हैं। इसी प्रकार अमरीकी संविधान और फ्रांसीसी 'मानव और नागरिक अधिकार की घोषणा' में भी लॉक के विचार दिखाई देते हैं।

मांटेस्क्यू (1679-1755) सिद्धांतवादी के अधिक इतिहासकार, एक उत्सुक पाठक तथा राजनीतिक व्यवस्था का चतुर विश्लेषक था। उसकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक है। The Sprit of Laws. वह शानदार क्रांति के बाद स्थापित अंग्रेजी सरकार का महान प्रशंसक था। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि अलग-अलग परिस्थितियों में अलग-अलग सरकार अनुकूल होती हैं। जैसे विशाल देशों के लिए निरंकुश राजतंत्र, फ्रांस जैसे मध्यम दर्ज के देश के लिए सीमित राजतंत्र और स्विट्जरलैंड जैसे छोटे देश के लिए गणतंत्र उपयोगी होगा। उसने न केवल लॉक के **सीमित प्रभुता के सिद्धांत** का समर्थन किया बल्कि यह भी बताया कि कैसे शक्ति के पृथककरण तथा नियंत्रण और संतुलन के नियमों द्वारा इसे प्राप्त किया जा सकता हैं। उसने बताया कि सरकार के तीन अंग होते है।-कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका और इन तीनों को एक दूसरे से अलग और समान रूप से शक्तिशाली होना चाहिए। **राजनीतिशास्त्र के प्रति मांटेस्क्यू की यह सबसे महान देन थी।** अमेरिकी संविधान में पृथककरण के सिद्धांत को लिखित रूप में अपनाया गया।

आधुनिक जनतंत्र का जन्मदाता लॉक या मांटेक्यू नहीं, बल्कि रूसों था। सोशल-कांट्रेक्ट और सकेंड डिस्कोर्स नामक अपनी पुस्तकों में उसने एक प्राकृतिक अवस्था की कल्पना की जब मनुष्य स्वतंत्र, समान और खुश था। किन्तु जब एक व्यक्ति ने जमीन का एक प्लाट घेरकर यह कहा कि 'यह मेरा हैं', तभी से मेरा और तेरा और आपसी झगड़ों की शुरूआत हुई। इस अशांति को समाप्त करने और अपनी खोई हुई स्वतंत्रता तथा आनंद को फिर से प्राप्त करने के लिए एक-दूसरे के साथ एक समझौता किया और इस प्रकार सरकार या राज्य का जन्म हुआ। रूसों ने बताया कि संप्रभुता जनता में निहित है। कानून राजा का आदेश नहीं है, बल्कि सामान्य इच्छा की अभिव्यक्ति है। सरकार तभी तक कायम रखी जा सकती हैं जब तक वह समझौते के नियमों का पालन करती हैं। जनता को यह अधिकार है कि समझौते का उल्लंघन करने वाली सरकार को उखाड़कर नई सरकार स्थापित कर ले। प्रजातंत्र की खुली उद्घोषणा इससे बेहतर कहीं और नहीं मिलती। फ्रांस की क्रांति के विभिन्न चरणों पर इस विचारधारा का काफी असर हुआ।

कुछ बुद्धिवादी दार्शनिकों ने अर्थशास्त्र की ओर भी ध्यान दिया। 15वीं शताब्दी के अंतिम दिनों से वाणिज्यवाद पश्चिमी यूरोप का सबसे प्रबल सिद्धांत और व्यवहार था। नियंत्रित अर्थव्यवस्था की यह पद्धति 17वीं सदी में अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुका था। केवल डच नीदरलैंड ही स्वतंत्र व्यापार को अपनाये रख सका। प्रबुद्धवादी दार्शनिकों ने तर्क दिया कि अगर दुनिया कुछ सामान्य यांत्रिक नियमों से चलती है, तो अर्थशास्त्र का भी कुछ सामान्य प्राकृतिक नियम होगा। केने

(Quesnay) के नेतृत्व में कुछ फ्रांसीसी अर्थशास्त्रियों ने यह बताया कि अर्थशास्त्र के भी अपने कुछ नियम हैं- यह नियम हैं मांग और पूर्ति के। ये नियम तभी अपने सर्वोत्तम रूप में चल सकते हैं जब व्यवसाय को सरकारी नियंत्रण से मुक्त कर दिया जाए। इस सिद्धांत को लैसज फेयर (Lassiez Faire)या उन्मुक्त व्यापार का सिद्धांत कहा जाने लगा। इस सिद्धांत का प्रमुख प्रतिपादक एडमस्मिथ था। 1776 ई. में प्रकाशित Wealth of Nations नामक पुस्तक में इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया था। एडम स्मिथ और फ्रांसीसी अर्थशास्त्रियों का अमेरिकी और फ्रांसीसी क्रांतियों के नेता पर काफी प्रभाव पड़ा।

प्रबुद्धवादी चिन्तन की मुख्य धाराएँ (Main Currents of Enlightenment Thoughts)

यह स्पष्ट है कि फ्रांस और यूरोप में चिंतन की धाराएँ भिन्न एवं परस्पर विरोधी थीं। अधिकांश लोग प्रगति, विवेक, विज्ञान और सभ्यता में विश्वास करते थे। रूसो इन बातों पर संदेह करता था, और वह चरित्र की अच्छाइयों का प्रशंसक था। माण्टेस्क्यू चर्च को उपयोगी मानता था, लेकिन वह धर्म में विश्वास नहीं करता था। रूसों धर्म में विश्वास करता था, किन्तु किसी चर्च की आवश्यकता को नहीं मानता था। मान्टेस्क्यू व्यावहारिक राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए चिन्तित था, वाल्तेयर बौद्धिक स्वतंत्रता की गारण्टी के बदले राजनीतिक स्वतंत्रता का बलिदान कर सकता था, रूसो समाज के ओछेपन से मुक्ति चाहता था, और ऐसी स्वतंत्रता का समर्थक था जो प्राकृतिक उन्मुक्तता के नजदीक हो। अधिकांश दार्शनिक वाल्तेयर के विचारों के निकटतम थे।

प्रबोधन युग के विचारों का सबसे **सक्रिय केन्द्र फ्रांस** था। फ्रांसीसी **फिलोसोफेज** ने पूरे यूरोप की यात्रा की। फ्रेडरिक द्वितीय और कैथरिन द्वितीय ने फ्रांसीसी चिन्तकों को अपने दरबार में आमंत्रित किया। सेंट पीटर्सबर्ग और बर्लिन के अकादमियों की भाषा फ्रेंच थी। फ्रेडरिक ने फ्रांसीसी भाषा में पुस्तकें लिखीं। लगभग पूरे यूरोप के उच्च वर्गों की संस्कृति एक समान और विश्वव्यापी (Cosmopolitan) थी, और यह संस्कृति प्रबल रूप से फ्रांसीसी थी। लेकिन, इंगलैण्ड भी महत्वपूर्ण था। जो इंग्लैण्ड अभी तक यूरोपीय चेतना के बाह्य सीमान्त पर था, अब केन्द्र की ओर उन्मुख हुआ। मान्टेस्क्यू और वाल्तेयर ने यूरोप के लिए इंगलैंड की 'खोज' की। उन्हीं के माध्यम से बेकन, न्यूटन और लॉक के विचार और अंग्रेजी कानून और संसदीय सरकार का पूरा सिद्धांत सामान्य बहस और टिप्पणी की विषय वस्तु बना। ब्रिटिश सम्पत्ति एंव साम्राज्य के उदय ने इन विचारों को अप्रतिरोध्य सम्मान प्रदान किया। जैसे-जैसे अंग्रेज परिवार सम्पन्न होते गए, वैसे-वैसे उनके पुत्रों ने यूरोप की 'ग्रैंड यात्रा' की और अन्त में अंग्रेज (Milords anglais) न केवल यूरोपीय लोगों के बीच सुपरिचित दिखाई पड़ने लगे, बल्कि लोग उनसे ईर्ष्यो भी करने लगे। इन सारे फ्रांसीसी और अंग्रेजी प्रभावों ने आधुनिक सभ्यता में पश्चिमी यूरोप के नेतृत्व को बढ़ाया।

प्रबोधन का विचार पूर्णतः धर्मनिरपेक्ष था। चर्च अधिक से अधिक, समाज की एक उपयोगी संस्था मानी जाती थी। अधिक प्रयतमानों (Militants) के लिए चर्च बर्बरता का मात्र एक अवशेष था। स्थापित चर्चो के स्वयं चर्चमेन (Churchmen) धार्मिक उत्साह को संदेह की दृष्टि से देखते थे। यह सही है कि लगभग हर जगह धार्मिक जागरण का लक्षण दिखाई पड़ता हैं, जो ईसाई धर्म के मूल उपदेशों (Gospel teachings) के नए एवं उत्प्रेरक अनुभूति पर बल देता था, जेनसनवाद (Jansenism) फ्रांस में कायम रहा, भक्तिवाद (Pietism) जर्मनी में विकसित हुआ, इंगलैंड में मेथेडिस्ट आन्दोलन (Methodist movement) शुरू हुआ, आंग्ल-अमेरिकी उपनिवेशों में 'महान् जागरण- (Great awakening) उत्पन्न हुआ। किन्तु, इन धर्मजागरणवादी आंदोलनों को सबसे अधिक सफलता निचले वर्गों में मिली। एंग्लिकन, लूथेरन और कैथोलिक चर्च अपनी शान्ति भंग नहीं करना चाहते थे। बिशप उस युग के परिष्कृत एवं भद्र लोग थे, और बौद्धिक नेताओं ने सारे चर्च को दरकिनार कर दिया। धर्म के प्रति सहिष्णुता या उदासीनता अब प्रगति का प्रतीक बन गया। पुराने ईसाई विचार आवश्यक नहीं रह गए। चिंतकों ने समाज, विश्व इतिहास, मानव नियति और अच्छे एवं बुरे के स्वरूप के बारे में ऐसे सिद्धांत दिए, जिसमें ईसाई व्याख्याओं की कोई भूमिका नहीं थी। पुराने ईसाई सद्गुण, जैसे-विनम्रता, ब्रह्मचर्य, दु:ख'दर्द में सहनशीलता अब महत्वपूर्ण नहीं रह गए (रूसों को छोड़कर)। **ईसाई प्रेम मानवतावादी सदिच्छा में रूपान्तिरित और लौकिक (Secularised) हो गया। धरती पर अधिक सुखद एवं शालीन जीवन की और पीढ़ी-दर-पीढ़ी समाज की प्रगति एक प्रबल विचार बन गया, जिसने मानवजीवन के इतिहास और नियति को एक नया अर्थ (Meaning) प्रदान किया।** इस विश्वास की अभिव्यक्ति कण्डरसेट नामक दार्शनिक के विचार में हुई, जिसने फ्रांस की क्रांति के दौरान आत्महत्या करने के कुछ ही दिन पहले Outline of the progress of the Human Mind नामक पुस्तक लिखी थी।

राज्य को अब प्रगति का मुख्य उपकरण माना जाने लगा। चाहे माण्टेस्क्यू के विचारों पर आधारित सीमित राजतंत्र हो या वाल्तेयर द्वारा प्रतिपादित प्रबुद्ध निरंकुशतंत्र, या फिर रूसों द्वारा प्रस्तुत गणतंत्र-राज्य द्वारा व्यवस्थित। समाज को ही सामाजिक कल्याण की सर्वश्रेष्ठ गारण्टी माना गया। अब लोग अपनी रक्षा के लिए प्रबुद्ध राज्य की ओर देखने लगे और प्रगति की हर आशा राजनीतिक सुधार, शिक्षा और प्रबुद्ध वातावरण के निर्माण पर निर्भर रहने लगी।

यद्यपि इस युग के विचारक राजकीय सुधारों में विश्वास रखते थे, किन्तु वे राष्ट्रवादी नहीं, बल्कि सर्वमुक्तिवादी (Universalists) थे। मानवमात्र की एकता में विश्वास करते थे, और यह मानते थे कि सारे लोग एक अधिकार और विवेक के एक ही प्राकृतिक कानून के अन्तर्गत आते हैं। यहाँ यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने शास्त्रीय एवं ईसाई दृष्टिकोण को नए रूप में अपनाया। वे मानते थे कि सारे लोग समान रूप में इस प्रगति में हिस्सा लेंगे। अन्ततोगत्वा सारे लोगों में सहमति होगी, और इतिहास की परिणति एक समरूप सभ्यता में होगी, जिसमें सारे लोग और प्रजातियाँ सहभागी होंगी। यह माना गया कि किसी राष्ट्र का विशिष्ट संदेश नहीं है। फ्रांसीसी विचारधारा व्यापक रूप से लोकप्रिय थी, लेकिन इसे फ्रांसीसी 'राष्ट्रीय चरित्र- से उत्पन्न विशिष्ट फ्रांसीसी नहीं माना जाता था। बात मात्र इतनी थी कि उस समय फ्रांसीसियों को सबसे अधिक सभ्य और सबसे विकसित माना जाता था। प्रबोधन युग के बाद फिर भी मानवमात्र की अन्तर्निहित समानता में विश्वास नहीं किया गया।

तत्कालीन सारे विचारों का ध्येय मानव-मुक्ति थी। प्रबोधन के सारे विचार किसी-न-किसी रूप में स्वतंत्रता की समस्या से जुड़े हुए थे। माण्टेस्क्यू निरंकुश राजतंत्र के विरूद्ध गारण्टी चाहता था। रूसों **सामाजिक बनावटीपन और प्रतिबन्धों से मुक्ति** चाहता था। वाल्तेयर और अन्य दार्शनिकों के लिए स्वतंत्रता का अर्थ था **चर्च और असहिष्णुता से मुक्ति, मस्तिष्क की स्वतंत्रता, गलतफहमी और अज्ञानता से मुक्ति** जो दासता का सबसे वीभत्स रूप हैं। मुक्ति मार्ग प्रशस्त करने के लिए, युगों की आदतों से लोगों को झकझोरने के लिए, आध्यात्मिक मुक्ति को अवरूद्ध करने वाली शक्तियों को दबाने के लिए वाल्तेयर और अन्य विचारक एक शक्तिशाली एवं अनुकूल सरकार, अर्थात् प्रबुद्ध निरंकुश राजा पर भरोसा करने के लिए तैयार थे। वाल्तेयर तथा अन्य दार्शनिकों द्वारा प्रबुद्ध निरंकुशतंत्र लगभग 1740 ई. के बाद यूरोप में सरकार का विशिष्ट रूप बन गया।

औद्योगिक क्रांति

औद्योगिक क्रांति उत्पादन के साधन में द्रुत परिवर्तन को रेखांकित करती है जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन में मानव का स्थान मशीन ने ले लिया, कुटीर उद्योगों के स्थान पर कारखाना प्रणाली तथा दस्तकारी के स्थान पर मशीन-युग का आरंभ हुआ।

क्रांति का प्रचलित अर्थ अकस्मात् परिवर्तन होता है। 19वीं सदी में तकनीकी क्रियाओं में आश्चर्यजनक रूप से अकस्मात् परिवर्तन हुआ जिसका प्रभाव राजनीति, समाज और अर्थतंत्र पर पड़ा इससे राज्य की नीति भी प्रभावित हुई और आम आदमी भी।

औद्योगिक क्रांति का आर्थिक आधार तैयार किया चार क्रांतियों- कृषि क्रांति, जनांकिकीय क्रांति, व्यवसायिक क्रांति और परिवहन क्रांति ने। इसका तकनीकी आधार तैयार किया वैज्ञानिक क्रांति ने तथा इसका वैचारिक आधार तैयार किया प्रबोधन काल के चिंतन ने।

औद्योगिक क्रांति तीन क्षेत्रों जैसे - आर्थिक संगठन, तकनीकी तथा व्यापारिक ढांचे में होने वाली सामूहिक प्रक्रिया का परिणाम थी।

औद्योगिक क्रांति का तात्पर्य उद्योगों में मशीनी प्रणाली का आगमन तथा कारखाना प्रणाली के उद्भव से है। उत्पादन प्रणाली में आधारभूत या आमूल-चूल परिवर्तन को ही औद्योगिक क्रांति कहा गया।

औद्योगिक क्रांति के कारण

औद्योगिक क्रांति सर्वप्रथम इंजीनियरिंग उद्योग से प्रारंभ हुई और फिर लोहा, इस्पात, कोयला, सूती वस्त्र उद्योग, रंग, रसायन और यातायात में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों के पीछे निम्नलिखित कारण प्रमुख रूप से उत्तरदायी थे-

1. **पुनर्जागरण एवं भौगोलिक खोजें**
2. **व्यापारिक पूंजी का योग**
3. **कृषि का विकास**
4. **नये उद्योगों का जन्म**
5. **सूती वस्त्रोद्योग का विकास**
6. **लोहे का उत्पादन**
7. **फ्रांस की राज्य क्रांति**
8. **अन्य नये आविष्कार**
9. **पर्याप्त बाजार का होना**
10. **साम्राज्यवादी भावना**
11. **शिक्षा का प्रसार**
12. **जनसंख्या में वृद्धि**
13. **यातायात के साधनों का विकास**
14. **राष्ट्रीयता की भावना**
15. **भौतिकता में वृद्धि**

सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रांति के होने के कारण

औद्योगिक क्रांति सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में हुई। राजनीतिक दृष्टि से इंग्लैण्ड कोई विशेष शक्तिशाली देश नहीं था। फ्रांस इंग्लैण्ड की तुलना में अधिक समृद्ध था, फिर भी इस क्रांति का सूत्रपात इंग्लैण्ड में ही हुआ। निश्चय ही इसके कुछ विशेष कारण थे, जो निम्न है-

प्राकृतिक कारण

1. **प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता**
2. **अनुकूल भौगोलिक स्थिति**
3. **जलवायु**
4. **कटा-फटा समुद्री तट**
5. **सामुद्रिक शक्ति की श्रेष्ठता-**

आर्थिक कारण

1. **आर्थिक विकास के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि का पाया जाना**
2. **श्रमिकों का अभाव तथा श्रम संचयक साधनों की आवश्यकता**
3. **पूंजी का असीमित संचय**
4. **विस्तृत बाजार क्षेत्र**
5. **वैज्ञानिक आविष्कार**
6. **यातायात का विकास**
7. **दक्ष श्रमिकों की उपलब्धि**
8. **इंग्लैण्ड की व्यापारिक तथा आर्थिक नीति**
9. **संगठन की योग्यता**
10. **बैंकिंग व्यवस्था का विकास होना**
11. **व्यक्तिगत आर्थिक स्वतंत्रता**
12. **विकासशील दृष्टिकोण**

राजनीतिक कारण

1. **राजनीतिक स्थायित्व एवं शांति का वातावरण**
2. **बाह्य आक्रमणों से मुक्ति**
3. **फ्रांस की राज्य क्रांति**
4. **राज्य की अभिरूचि**
5. **दास-प्रथा से मुक्ति तथा पूर्ण व्यक्तिगत स्वतंत्रता**

सामाजिक-धार्मिक कारण

सामाजिक तथा धार्मिक वातावरण की अनुकूलता

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि 18वीं शताब्दी के आरंभ में इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रांति की पोषण एवं अनुकूल सभी परिस्थितियां उपस्थित थी। इसीलिए वह यूरोप में औद्योगिक क्रांति का प्रणेता बन गया।

औद्योगिक क्रांति के प्रभाव

औद्योगिक क्रांति ने समाज की अर्थव्यवस्था के सभी पहलुओं, जैसे- आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था आदि को प्रभावित किया। यही नहीं, इस क्रांति ने समस्त मानव जाति की गतिविधियों में हलचल मचा दी। 'क्रांति का परिणाम था नयी जनता, नये वर्ग, नयी नीतियां, नयी समस्यायें और नये साम्राज्य।' औद्योगिक क्रांति जो लम्बी अवधि तक चली, का आधार ही नवीन आविष्कार, नवीन प्रणालियां तथा नवीन विचारधारा थी। औद्योगिक क्रांति ने ही इंग्लैण्ड को विश्व में आर्थिक प्रभुसत्ता दिलवायी। औद्योगिक क्रांति के मुख्य रूप से निम्नलिखित परिणाम निकले जिन्हें हम आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्रों में विभक्त कर सकते है-

I. आर्थिक परिणाम

- **उत्पादन में वृद्धि**
- **घरेलू उद्योगों का विनाश**
- **बड़े कारखानों की स्थापना**
- **फैक्ट्री पद्धति की स्थापना**
- **विशेषज्ञता का विकास**
- **नये नगरों का विकास**
- **बेरोजगारी की समस्या**
- **राष्ट्रीय बाजारों को संरक्षण**
- **परस्पर निर्भरता बढ़ाना**
- **संयुक्त पूंजी वाली कंपनियों का विकास**
- **पूंजीपतियों एवं श्रमिकों के संबंधों में परिवर्तन**
- **पूंजीपतियों का औद्योगिक एकाधिकार**
- **बैंकिंग एवं बीमा व्यवसाय का संगठन**
- **आर्थिक संकटों की उत्पत्ति**
- **उद्योगों का स्थानीयकरण**
- **उद्योगपतियों का संगठन**
- **विकास दर में वृद्धि**
- **यातायात के साधनों का विकास**
- **बड़े पैमाने पर कृषि एवं यन्त्रीकरण**

II. सामाजिक परिणाम

औद्योगिक क्रांति के सामाजिक परिणाम भी महत्वपूर्ण थे। जहां एक ओर औद्योगिक क्रांति से भौतिक समृद्धि के नये-युग का मार्ग प्रशस्त हुआ, वहीं दूसरी ओर सामाजिक उत्पीड़न, वर्ग संघर्ष और शोषण की शुरूआत हुई। सामाजिक क्षेत्र में निम्नलिखित प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देते है-

- **मध्यम वर्ग का उदय**
- **समाज में नया वर्ग भेद-** समाज में तीन नये वर्गों का आविर्भाव हुआ- (i) पूंजीपति वर्ग, (ii) शिक्षित मध्यम वर्ग (iii) श्रमिक वर्ग।
- **श्रमिकों की दुर्दशा**
- **ग्रामीण जनसंख्या में कमी**
- **जनसंख्या का स्थानान्तरण**
- **संयुक्त पारिवारिक प्रथा का टूटना**
- **अनैतिकता का विकास**
- **जन-स्वास्थ्य की समस्या**
- **गन्दी बस्तियों की समस्या**
- **जीवन-स्तर में उन्नति**

- **मनोरंजन के साधनों में वृद्धि**
- **शिक्षा के प्रति चेतना का उदय**

III. राजनीतिक परिणाम

औद्योगिक क्रांति ने राजनीतिक क्षेत्र को भी जबरदस्त रूप से प्रभावित किया। सामाजिक शोषण के विरूद्ध अधिनियम, स्वतंत्र व्यापार नीति, उपनिवेशवाद की सफलता, मध्यम वर्ग का राजनीतिक अधिकारों के लिए संघर्ष तथा संसदीय सुधार, राजनीतिक सुदृढ़ता आदि इस क्रांति के ही परिणाम है। संक्षेप में इनका वितरण इस प्रकार है-

1. **राजनीतिक स्थिरता**
2. **औपनिवेशिक प्रतिस्पर्द्धा**
3. **विदेश नीतियों में परिवर्तन**
4. **मध्यम वर्ग का राजनीतिक उत्कर्ष**
5. **श्रमिक संघर्ष**
6. **सामाजवादी विचारधारा का विकास**

औद्योगिक क्रांति इंग्लैण्ड मे ही क्यों शुरू हुई?

औद्योगिक क्रांति इंग्लैण्ड मे ही प्रारंभ होने के कई कारण थे जिनमे पांच प्रमुख कारण निम्नलिखित है-

- अनुकूल राजनीतिक स्थिति।
- कोयले व लोहे की खानों का पास-पास होना।
- विशाल औपनिवेशिक साम्राज्य।
- इंग्लैण्ड की नौ-सैनिक श्रेष्ठता।
- सर्वप्रथम इंग्लैंड मे ही बैंकिंग प्रणाली का विकास हुआ।

औद्योगिक क्रांति से आए परिवर्तनों का संक्षिप्त विवरण दें।

औद्योगिक क्रांति द्वारा हुए महत्वपूर्ण परिवर्तन निम्नलिखित है-

- वस्त्र उद्योग मे कताई और बुनाई का कार्य जो पहले हाथ से होता था, अब शक्ति चालित यंत्रों की सहायता से होने लगा।
- यंत्रो एवं मशीनों को चलाने के लिए जलशक्ति के स्थान पर वाष्पशक्ति और बाद मे विद्युत व तेल का प्रयोग होने लगा।
- वाष्प चालित रेल इंजन और बाद मे विद्युत इंजन से तथा वाष्प शक्ति चालित जहाजों से यातायात के साधनों को सस्ता व तीव्रगामी बना दिया।
- बढ़े हुए उत्पादन के कारण अंतर्राष्ट्रीय व्यापार मे अत्यधिक वृद्धि हुई।

साम्राज्यवाद व उपनिवेशवाद

साम्राज्यवाद व उपनिवेशवाद एक दूसरे से अंतर्संबंधित अवधारणाएं हैं। साम्राज्यवाद के अंतर्गत हम मातृदेश में हो रहे परिवर्तनों एवं साम्राज्य विस्तार के द्वारा उसके ऊपर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करते हैं जबकि उपनिवेशवाद के अंतर्गत उपनिवेश अर्थात गुलाम देश में बनाई जा रही नीतियों व उनके प्रभावों का अध्ययन करते हैं। उपनिवेशवाद मुख्यत: जनांकिकीय संकल्पना मानी जाती है जिसमें संप्रभु पूंजीवादी देश अपने नागरिकों को बलपूर्वक गुलाम देश में बसाता है और यह विदेशी आबादी स्थानीय लोगों पर आधिपत्य स्थापित कर लेती है और धीरे-धीरे उसक सभी आयामों (राजनीतिक-सामाजिक-आर्थिक) को अपने हितों के अनुसार परिवर्तित करने लगती है।

उपनिवेशवाद की प्रमुख विशेषताएं

- उपनिवेश व मातृदेश के संबंध असमानता पर आधारित होते हैं। जहां मातृदेश सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से उन्नत स्थिति में होता है, तो वहीं उपनिवेश की सामाजिक-आर्थिक संरचना को जानबूझकर पिछड़ा हुआ रखा जाता है, ताकि उसका भरपूर शोषण किया जा सके।
- उपनिवेश की संरचना को इस प्रकार परिवर्तित किया जाता है कि वह न तो पूर्व पूंजीवादी स्थिति में रह पाता है और न ही पूरी तरह से वहां पूंजीवाद का विकास हो पाता है। जैसे ब्रिटिश आर्थिक नीतियों ने परंपरागत भारतीय उद्योगों को समाप्त कर आधुनिक उद्योगों का विकास अत्यंत सीमित रूप में ब्रिटिश आवश्यकताओं के अनुसार किया। न कि भारत के विकास के लिए।
- उपनिवेशवाद में औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था का बाह्य विश्व से एकीकरण हो जाता है किंतु आंतरिक अर्थव्यवस्था का विघटन होने लगता है और औपनिवेशिक नीतियों के कारण उपनिवेश से संपत्ति का निरंतर प्रवाह मातृदेश की ओर बना रहता है जिसके बदले में उपनिवेश को वास्तविक अर्थों में कुछ भी प्राप्त नहीं होता। इसे ही नौरोजी ने 'धन की निकासी' कहा और भारत की बर्बादी का मुख्य कारण बताया।
- उपनिवेशवाद के आर्थिक संबंधों की व्याख्या इस आधार पर भी की जाती है कि संप्रभु देश गुलाम देश की अर्थव्यवस्था को अपना पूरक बना लेता है। औपनिवेशिक शोषण को बढ़ावा देने के लिए जिन नीतियों को अपनाया जाता है, उसका मुख्य लक्ष्य तो शोषण करना ही होता है किंतु जाने-अनजाने में कुछ ऐसी भावना व शक्तियों का जन्म हो जाता है जो उपनिवेश में रहने वाले लोगों में जागरूकता का प्रसार करती है और यही तत्व वहां राष्ट्रीय संघर्ष व स्वतंत्रता को भी जन्म देने का एक प्रमुख कारक होता है।

अफ्रीका में उपनिवेश

अमेरिका की तरह, अफ्रीका यूरोपवासियों के लिए अनजान क्षेत्र नहीं था। 1487 में बार्थोलोम्यू डिआज द्वारा केप ऑफ गुड होप की खोज से पहले भी अफ्रीका का उत्तरी भाग यूरोपीय गतिविधियों का हिस्सा था। मोरक्को से मिस्र तक का प्रदेश रोमन काल से ही भूमध्य सागरीय दुनिया का हिस्सा था। इसी प्रकार, पूर्वी अफ्रीका अरब व्यापार-तंत्र का हिस्सा बना हुआ था। 15वीं शताब्दी के प्रारंभ में, यूरोपवासियों ने कुछ समय के लिए अफ्रीका की उपेक्षा कर दी थी क्योंकि वे सोचने लगे थे कि अफ्रीका यूरोपीय मानदंडों के अनुसार एक गरीब देश है।

उन दिनों अफ्रीका का दक्षिणी तथा मध्य भाग अनेक जनजातीय कबीलों से आबाद था। यूरोपवासियों को उनकी संस्कृतियों की कोई जानकारी नहीं थी और न ही यूरोपवासियों ने अफ्रीकी संस्कृतियों को जानने की कोई कोशिश की। यूरोपवासियों की मुख्य दिलचस्पी तो दास-व्यापार में थी जिसके अंतर्गत वे अफ्रीका के मूल निवासियों को गुलाम बनाकर अधिकतर अमेरिका ले जाते थे।

अफ्रीका मे औपनिवेशिकरण उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशको मे स्थापित हुआ। 1870 के पहले अफ्रीका के एक छोटे से भू-भाग पर ही यूरोपीय राज्यों का अधिपत्य कायम हुआ था। उल्लेखनीय है कि फ्रांस ने 1830 में अल्जीरिया पर संक्षरण स्थापित किया, इसके बाद इंग्लैण्ड ने पहले केपकालोनी पर और फिर नेटाल पर अधिकार कर लिया। पश्चिमी तट पर जाम्बिया, गोल्ड कोस्ट, सिएरा-लियोन और लेगास पर इंग्लैण्ड का अधिपत्य था और सेनेगल, तथा गैबन पर फ्रांस का। पुर्तगाल ने अंगोला और मोजाम्बिक पर कब्जा कर रखा था और स्पेन ने स्पेनिश गुयाना पर। इसके अतिरिक्त अफ्रीका का जो भाग था, वह यूरोपियों के लिए डार्क कन्टीनेंट था। हेनरी मार्टिन स्टेनली द्वारा कांगों और सहायक नदियों के क्षेत्रों के अन्वेषण और उसके बाद प्रकाशित उसकी पुस्तक **थ्रू द कार्ड कान्टीनेट** ने यूरोपियों मे शेष अफ्रीका देशों के प्रति विशेष रूचि पैदा कर दी। परिणाम यह हुआ कि पूर्व का अज्ञात या डार्क क्षेत्र अब यूरोपीय व्यापारियों एवं उद्यमियों के लिए लूट का नया क्षेत्र बन गया। धीरे-धीरे यूरोपीय शक्तियों ने 280 लाख वर्ग मील से भी ज्यादा क्षेत्र मे फैले अफ्रीकी महाद्वीप पर कब्जा जमा लिया और इसका विभाजन कर दिया। इस प्रक्रिया मे उन्होने संधि और विजय अभियान जैसी रणनीतियां अपनायी। तथा उनके अंतर्गत यूरोपीय शक्तियों के प्रभाव क्षेत्रों को अंकित किया गया। इन संधियों .में 1890 तथा 1893 की आंग्ल-फ्रांसीसी सम्मेलन उल्लेखनीय है। इन सभी राज्यों की नीतियों मे चरित्रगत अंतर था। उदाहरण के तौर पर फ्रांसीसी सैनिक पक्ष पर विशेष ध्यान देते थे जबकि ब्रिटिश क्रूरतावादी नीतियों पर। इन सबका परिणाम यह हुआ कि शताब्दी के अंत तक नाइजीरिया पर कब्जा जमा लिया गया, जंजीबार को संरक्षण के अधीन कर लिया गया (1890), युगांडा को सरंक्षित राज्य बनाया गया

(1894) सूडान पर कब्जा किया गया (1896), जाम्बिया पर अधिपत्य किया गया (1891), आदि।

अनुसंधानकर्ताओं के कार्यो से जब अफ्रीका के संसाधनो का उद्घाटन हो गया तो साम्राज्यवादी उस पर (अफ्रीका) टूट पड़े और उसे आपस मे बांट लिया। अफ्रीका का बंटवारा (यूरोपीय साम्राज्यवादियों द्वारा अफ्रीका के क्षेत्रों को आपास मे बांट लेना ही अफ्रीका का बंटवारा/अफ्रीका का विभाजन कहलाता है) दो संदर्भ मे असाधारण माना गया है-

- यह बंटवारा क्रमिक न होकर बड़ी तीव्रता से हुआ।
- यह संपूर्ण बंटवारा बिना किसी युद्ध के संपन्न हो गया।

इसे बड़ी आश्चर्यजनक घटना ही कहा जा सकता है कि तीन दशकों के भीतर ही समस्त अफ्रीका, जो यूरोप से क्षेत्रफल मे तिगुना था, यूरोपीय देशो मे बिना किसी बड़े संघर्ष के विभाजित हो गया था। 1875 तक अफ्रीका के 10% भू-भाग (यह भी तटीय भू-भाग ही था) पर यूरोपीय देशों का अधिकर था, किन्तु 1900 ई. तक केवल 10% भू-भाग ही बिना विभाजन के रहा।

बंटवारे का प्रारंभ

अफ्रीका के बंटवारे (Scramble For Africa) का प्रारंभ तो 1880 के दशक में हुआ। यद्यपि इस दिशा में प्रयास एक दशक पूर्व ही शुरू हो चुके थे। विभाजन का औपचारिक प्रारंभ बेल्जियम के शासक लियोपोल्ड द्वितीय ने किया। 1875 मे उसने राजधानी ब्रुसेल्स में विश्व के भूगोलवेत्ताओं का विश्व सम्मेलन बुलाया जिसका उद्देश्य था अफ्रीका के महत्व पर विचार करना, वहां अनुसंधान एवं व्यापार कार्य को प्रोत्साहित करना और अफ्रीका मे ईसाई सभ्यता और संस्कृति का प्रचार करना। उसने स्टेनले की अपनी ओर से सहायता देकर अफ्रीका मे अनुसंधान के लिए नियुक्त किया और स्टेनले के कार्यो के फलस्वरूप कांगों में अपना व्यक्तिगत राज्य स्थापित किया। इस समय तक अन्य देशो मे भी अफ्रीका के प्रति रूचि जागृत हो चुकी थी। मिश्र मे इंग्लैंड ने अपने पैर जमा लिए। जब जो छीना-झपटी शुरू हुई। उसे नियमित एवं नियंत्रित करने के लिए कए अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाने की मांग की गई।

बर्लिन सम्मेलन (1884-85)

नवम्बर 1884 से फरवरी 1885 तक चले इस सम्मेलन के समक्ष तीन मुख्य समस्यायें थी-

1. कांगो क्षेत्र के बारे में निर्णय।
2. नाइजर प्रदेश पर विभिन्न देशों के दावों पर विचार करना।
3. नियमों का निर्धारण करना जिनके आधार पर भविष्य मे अफ्रीका क्षेत्रों पर यूरोपीय देशों के अधिकारों को मान्यता दी जा सके।

इस सम्मेलन मे निर्णय के रूप में जो सामान्य कानून तैयार किया गया उसे बर्लिन एक्ट कहा गया। इस पर सभी राज्यों के प्रतिनिधियों ने हस्ताक्षर किए थे। इसके अनुसार-

- कांगो फ्री स्टेट को तटस्थ राज्य के रूप में माना गया। सभी देशों को इससे व्यापार करने का अधिकार दिया गया।
- कांगो नदी घाटी मे सभी राज्यों की व्यापार एवं नौंचालन की स्वतंत्रता दी गई।
- यदि कोई यूरोपीय राष्ट्र अफ्रीका के किसी स्थल पर अधिकार जताता है, तो एक तो वह अधिकार वास्तविक होना चाहिए, दूसरे इसकी सूचना यूरोपीय राष्ट्रों को दी जानी चाहिए तभी यह अधिकार मान्य होगा।
- नाइजर नदी पर निर्णय किया गया कि इसके ऊपरी भाग पर ब्रिटेन तथा निचले भाग पर फ्रांस का अधिकार रहेगा।
- अफ्रीका के निवासियों का नैतिक तथा भौतिक कल्याण करने का भी उद्देश्य घोषित किया गया, किन्तु नैतिक एवं भौतिक कल्याण की घोषणाएं शीघ्र ही भुला दी गई जब लूट में उग्रता आई। 1914 तब अबीसीनिया तथा लाइबेरिया को छोड़कर पूरा अफ्रीका महाद्वीप को साम्राज्यवादियों ने आपस मे बांट लिया।

किसको-कितना मिला

अफ्रीका की लूट मे क्षेत्रीय दृष्टि से फ्रांस को सर्वाधिक विशाल प्रदेश प्राप्त हुआ। यद्यपि समृद्धि की दृष्टि से इंग्लैंड का भाग अधिक लाभदायक था। बर्लिन सम्मेलन के बाद फ्रांस ने फ्रेंच कांगों का निर्माण किया। इसके अलावा सेनेगल, फ्रेंच गिनी, आइवरी कोस्ट, मेडागास्कर, सहारा क्षेत्र भी फ्रांस को मिले। 1904 के समझौते द्वारा फ्रांस ने मिश्र में इंग्लैंड के हितों को मान्यता दी और बदले मे इंग्लैंड ने मोरक्कों में फ्रांस के अधिकार को स्वीकार कर लिया। फ्रांस को करीब 40 लाख वर्ग मील क्षेत्र प्राप्त हुआ जबकि इंग्लैंड का लगभग 33 लाख वर्ग मील क्षेत्र प्राप्त हुआ था। इस प्रकार इंग्लैंड क्षेत्रीय दृष्टि से दूसरे स्थान पर था, किन्तु लाभ की दृष्टि से वह पहले स्थान पर था। फ्रांस की उपलब्धि इसलिए भी कम महत्व की थी क्योकि उसके क्षेत्र मे सहारा का रेगिस्तान भी सम्मिलित था।

अफ्रीका में इंग्लैंड का प्रवेश: अफ्रीका में इंग्लैंड का प्रवेश केप कालोनी पर अधिकार करने के साथ ही हुआ। 1843 मे उसने नटाल पर अधिकार कर लिया। स्वेज नहर के निर्माण से इंग्लैंड के लिए मिश्र का महत्व बहुत बढ़ गया। 1875 में ब्रिटेन ने मिश्र के शासक से स्वेज नहर के शेयर खरीद लिए और 1882 में मिश्र को हथिया लिया। सूडान भी मिश्र के ही अधीन था। उसे भी 1898 में इंग्लैंड ने अधिकृत कर लिया। इस समय तक नाईजीरिया, सियरा लियोन, जाम्बिया, गोल्डकोस्ट आदि भी उसके अधिकार मे आ चुके थे।

1877 में जब इंग्लैंड ने ट्रांसवाल को ब्रिटिश साम्राज्य मे मिलाया तो बोअर (डच किसान) लोग भड़क उठे और पाल क्रुगर के नेतृत्व मे संघर्ष शुरू कर दिया। 1884 मे दोनों पक्षों मे समझौता हो गया, किंतु ट्रांसवाल में सोने की खानों का पता चलते ही अंग्रेजो ने ट्रांसवाल को हड़पने का प्रयास किया। युद्ध पुन: 1899 में शुरू हो गया, किंतु 1902 में दोनों पक्षों मे वेरीनिगिंग की संधि (Treaty of Vereeniging) हो गयी और बोअर लोगों ने ब्रिटिश प्रभुसत्ता को स्वीकार कर लिया। 1909 में केप कालोनी, नटाल, ट्रांसवाल तथा आरेन्ज फ्री स्टेट को मिला कर दक्षिण अफ्रीका का राज्य बनाया गया।

अफ्रीका में जर्मनी: जर्मनी को अफ्रीका का 10 लाख वर्ग मील क्षेत्र प्राप्त हुआ था। इस प्रकार यह तीसरे स्थान पर था। प्रारंभ में बिस्मार्क की उपनिवेश स्थापना मे कोई रूचि नही थी। वह जर्मनी को एक संतुष्ट राष्ट्र कहता था, किंतु वास्तव मे बिस्मार्क की इस नीति का उद्देश्य यह था कि इंग्लैंड से शत्रुता मोल न ली जाए। कुछ समय पश्चात जनता के दबाव तथा औद्योगिक विकास के कारण बिस्मार्क को उपनिवेश स्थापित करने पड़े। विलियम कैसर की नीति में तो विश्व राजनीति और साम्राज्यवाद केन्द्रीय तत्व हो गए थे। टोगोलैंड, कैमरून, पूर्वी अफ्रीका तथा दक्षिणी पश्चिमी अफ्रीका (नामीबिया) जर्मनी के महत्वपूर्ण उपनिवेश थे।

अफ्रीका में इटली: एकीकरण के पश्चात इटली ने भी उपनिवेश प्राप्त करने के प्रयास किए। उसने इरीट्रिया को अपने अधीन किया तथा सोमालीलैंड के एक भाग पर अधिकार किया, किन्तु 1896 में जब अबीसीनिया को अधिकृत करने का प्रयत्न किया तो वहां एडोवा के युद्ध (Battle Of Adowa) मे इटली पराजित हो गया।

कुछ समय तक औपनिवेशिकरण रूका रहा, किंतु 1911 में अगादिर संकट (Agadir Crisis) के समय उसने टर्की से ट्रिपोलो साइरीनिका, के प्रदेश बलपूर्वक छीन लिए। अगादिर संकट को द्वितीय मोरक्कों संकट के नाम से जाना जाता है।

इस प्रकार से पश्चिमी शक्तियों ने एक-एक कर अफ्रीका देशों पर कब्जा किया और कब्जा करने के बाद औपनिवेशिक काल में अर्थव्यवस्था को पूरी तरह से रूपांतरित कर दिया गया। 1880 से 1935 के मध्य नए उत्पादन संबंध स्थापित हुए। सड़क, रेल और संचार ने अर्थव्यवस्था को पूरी तरह से औपनिवेशिक सांचे मे ढाल दिया। अफ्रीका की आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्थाओं का अंत हुआ और औपनिवेशक अधिपत्य वाली अर्थव्यवस्था का उदय। स्वतंत्र आर्थिक संबंधों को समाप्त कर दिया गया और उनके स्वतंत्र सम्पर्को को तोड़

दिया गया। परम्परागत शिल्प नष्ट किए गये 'एक फसल अर्थव्यवस्था' स्थापित की गयी जिसमें नकदी फसलो पर विशेष बल दिया गया। इन नीतियों का परिणाम यह हुआ कि प्राकृतिक संसाधनों से संपन्न अफ्रीका लगातार अलाभप्रद स्थिति की ओर बढ़ाने लगा। यही नही अफ्रीका के भीतरी क्षेत्रों मे होने वाला व्यापार भी समाप्त होने लगा जिससे अफ्रीका देशों और लोगों, दोनों की ही आत्मनिर्भरता घट गयी। इस दौर मे भूमि हस्तांक्षरण का सिलसिला भी तेजी से चला। 1930 तक लगभग 2,740,000 हेक्टेअर जमीन केन्या मे हस्तांतरित की गयी। औपनिवेशिक अधिपत्य के परिणामस्वरूप अफ्रीका समाज में विभेदीकरण बढ़ता चला गया। व्यापक तौर पर किसान अपना पेशा छोडने पर विवश हुए और मजदूरीकरण की प्रक्रिया बढती चली गयी। अब सर्वथा नये अमीर किसानों का एक वर्ग सामने आया। यूरोपीय ताकतों ने वित्तीय पूंजी आधार पर अफ्रीका अर्थव्यवस्थाओ को औपनिवेशिक निर्भर क्षेत्रों मे बदल दिया।

एशिया में उपनिवेश

यूरोप ने केवल अफ्रीका पर ही अपना अधिकार नही जमाया वरन उसने एशिया के विशाल हिस्से पर भी अपना अधिकार कर लिया और शेष भाग अधिक शक्ति के साथ अपने अधिकार को बढ़ाने का लगातार यत्न करता रहा। अपने नियंत्रण द्वारा इंग्लैण्ड और फ्रांस ने काफी क्षेत्रों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में सफलता प्राप्त की, जैसे- इंग्लैण्ड ने भारत एवं बर्मा मे और फ्रांस ने भारत, हिन्द-चीन तथा चीन में। इसके प्रतिकूल रूस ने अपना प्रभुत्व उत्तरी एशिया मे यूराल पर्वतों से लेकर प्रशान्त महासागर तक स्थापित किया। एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि रूस इंग्लैण्ड और फ्रांस की अपेक्षा अधिक समय तक एशियाई शक्ति रहा था। क्योकि अमेरिका मे यात्रियों के आने के पूर्व ही उसने एशिया मे अपना विस्तार प्रारम्भ कर लिया था। प्राय: तीन शताब्दियों से रूस एशियाई राज्य रहा था जबकि इंग्लैण्ड भारत मे एक शक्ति के रूप मे उसके आधे काल तक रहा। तथापि 19वीं शताब्दी के पूर्व रूस ने एशिया पर औपनिवेशिक तथा व्यापारिक विस्तार के लिए क्षेत्र के रूप मे ध्यान नही दिया बल्कि वह साइबेरिया को केवल अपने असन्तुष्ट अथवा अपराधी नागरिकों को भेजने के लिए सुविधाजनक कारावास मात्र के रूप में मानता रहा। यूरोप की घटनाओं ने उसको अपने एशियाई विकास पर अधिकाधिक ध्यान केन्द्रित करने को विवश किया। वहां उसने उस वस्तु को अर्थात महासागर के सम्पर्क को संसार के उन्मुक्त मार्ग को प्राप्त किया जिसको प्राप्त करने के लिए वह यूरोप मे दीर्घकाल से प्रयत्न करना रहा था लेकिन उस विशेष के कारण जिसका उसको सामना करना पड़ा वह असफल रहा। रूस के समुद्र तट पर यूरोप अथवा एशिया मे ऐसा कोई भी बंदरगाह नही था जहां बर्फ न जमती हो। तुर्की से यूरोप मे ऐसा बंदरगाह प्राप्त करने मे पुन: एवं निर्णयात्मक रूप से बाधित होने से उसने ऐसे बंदरगाहों को पूर्वी एशिया में प्राप्त करने का प्रयत्न किया। उसकी यह महत्वाकांक्षा उसकी एशियाई नीति की व्याख्या करती है। 1858 मे उसने चीन से आमूर नही का सम्पूर्ण तट ले लिया और दो वर्ष पश्चात दक्षिणी दिशा में और अधिक भू-भाग प्राप्त कर लिया। यह भाग समुद्री प्रान्त था। इसके दक्षिणी सिरे पर उसने ब्लाडीबोस्टक नामक सामुद्रिक युद्ध-केन्द्र स्थापित किया जिसका आशय पूर्व में प्रधानता से था। लेकिन शीतकाल मे यह भी बर्फ से मुक्त नही रहता था। अत: रूस को अभी भी चिर अभिलाषित निष्कासन मार्ग प्राप्त नही हुआ था।

एशिया महाद्वीपों में भारत, चीन, जापान और दक्षिण-पूर्व एशिया द्वीपसमूह जैसे अनेक देश 16वीं शताब्दी में यूरोपीय व्यापार के केंन्द्र बन गए। कालांतर में यूरोपवासियों ने इन देशों पर शासन चलाने के लिए अपनी सैन्य शक्ति तथा 'फूट डालों और राज करों' की नीति का उपयोग करना शुरू कर दिया। पुर्तगालवासी पहले यूरोपीय थे जिन्होंने चीन तथा भारत के पश्चिमी तटों पर अपनी बस्तियां बसाई। ऐसी चौकियों को उन फैक्टरो यानी वाणिज्यिक एजेंटों के कारण 'फैक्टरियां' कहा जाने लगा, जो स्थानीय जनता से व्यापार करने के लिए वहां रखे जाते थे। आगे चलकर डच (हालैंडवासी), ब्रिटिश अंग्रेज और फ्रांसीसी व्यापारी इस दौड़ में पुर्तगालियों के मुकाबले आ गए। चीन में पुर्तगाली व्यापारियों ने मकाओ को पकड़ा जबकि हालैंडवासियों ने ताइवान में अपना अड्डा जमाया। भारतीयों की तरह चीन के लोगों ने भी यूरोपवासियों का प्रतिरोध किया लेकिन अंततोगत्वा उन्होंने घुटने टेक दिए ओर संधि करके यूरोपवासियों को अपने समुद्री पत्तनों का इस्तेमाल करने की रियायतें दे दीं। जापान में, यूरोपवासियों के प्रवेश के विरूद्ध प्रतिक्रिया चीन के मुकाबले ज्यादा तीखी रही। वही पुर्तगालियों ने 16वीं शताब्दी के दौरान व्यापार करने की सुविधाएं प्राप्त कर ली। हालैंडवासी (डच) भी उनसे पीछे नहीं रहे और उन्होंने भी 19वीं शताब्दी करने का अनन्य अधिकार प्राप्त कर लिया। 17वीं शताब्दी के दौरान एक फलता-फूलता वाणिज्यिक साम्राज्य स्थापित करने में डच व्यापारी अंग्रेजों के मुकाबले अधिक सफल रहे। 1602 में, डच ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना हुई। इस कंपनी ने एशिया में स्थापित ईस्ट इंडिया कंपनी से मुकाबला करना शुरू कर दिया। डच कंपनी ने शीघ्र ही सुमात्रा, बोर्नियो और मलाया प्रायद्वीप के मसाले के टापुओं पर अपना पक्का नियंत्रण स्थापित कर लिया और उस क्षेत्र से पुर्तगाली व्यापारियों को निकाल बाहर किया।

दक्षिण एवं दक्षिण-पूर्व एशिया मे प्रवेश

एशिया के इतिहास में दक्षिण एवं दक्षिण-पूर्व एशिय का अत्यधिक महत्व रहा है। साम्राज्यवादी तथा उपनिवेशवादी शक्तियों ने हमेशा एशिया के इस भाग पर अपना आधिपत्य स्थापित करने का समय-समय प्रयास किया। प्रारंभ मे व्यापारिक वस्तुओं की प्राप्ति हेतु तथा इसके एकाधिकार के पश्चात राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास किया गया था। दक्षिण एशिया मे प्रमुखत: भारत, पाकिस्तान, नेपाल, बांग्लादेश, भूटान, मालदीव तथा श्रीलंका के भू-भाग आते है। भारत की स्वतंत्रता के पूर्व पाकिस्तान एवं बांग्लादेश भारतवर्ष के ही भू-भाग रहे है।

भारत का यूरोपीय देशों से प्रारंभिक संपर्क

19वीं शताब्दी मे तीन पश्चिमी देशो की व्यापारिक कंपनियां भारत से व्यापर करती थी। ये कंपनियों इंग्लैंड, फ्रांस तथा हालैंड की थी। प्रारंभ मे इन तीनों कंपनियों मे व्यापारिक स्पर्द्धा अधिक थी। लेकिन इस शताब्दी के अंत तक हालैंड की व्यापारिक कंपनी केवल पूर्वी द्वीप समूह तक ही सीमित थी और भारतीय व्यापार पर नियंत्रण स्थापित करने की महत्वकांक्षा शेष दोनों देशो की कंपनियों के मध्य बनी रही। दक्षिण भारत मे सर्वोच्चता के लिए इंग्लैंड और फ्रांस के बीच 1744 से 1763 के मध्य तीन कर्नाटक युद्ध हुए। तीसरे कर्नाटक युद्ध में (1756-63) अंग्रेजों ने निर्णायक रूप से फ्रांसीसीयों को परास्त किया। उसके पश्चात फिर सभी फ्रांसीसी संगठित होकर अंग्रेजों का मुकाबला न कर सके।

यद्यपि 1784 ई. के पिट्स इंडिया एक्ट में कहा गया था- ''भारत में राज्य विस्तार और विजय योजनाओं का अनुसरण करना इस राष्ट्र की नीति, सम्मान और इच्छा के विरूद्ध है।'' लेकिन अंग्रेजो की नीति आरंभ से ही अस्पष्ट थी। भारत मे साम्राज्य प्रसार के लिए सहायक संधि नीति का महत्वपूर्ण योगदान रहा। 1765 ई. से 1801 ई. के इस सहायक संधि प्रथा के विभिन्न चरण है। सबसे पहले राज्य की सैनिक सहायता को सामान्य आश्वासन दिया गया। बाद मे एक निश्चित धनराशि के बदले में सेना को राज्य की सहायता के लिए दे दिया गया। इसी का एक अन्य रूप यह भी रहा कि सेना को राज्य की सीमा मे ही स्थापित कर दिया गया। सहायक संधि का अंतिम विकसित रूप यह था कि सेना के खर्च के लिए राज्य का एक निश्चित भू-भाग अंग्रेजों को स्थायी रूप से मिल गया।

इन सहायक संधियों को अपनाने से भारतीय शासकों को हानि ही हुई। उनकी आय का अधिकांश सेना पर खर्च हो जाता था। भारतीय शासकों को प्रशासनिक योग्यता दिखाने का अवसर ही नही मिला। 1815 मे लार्ड हेस्टिंग्स ने अंग्रेजी नीति का उद्देश्य भारत मे सर्वशक्तिशाली प्रभुत्व स्थापित करना बताया। भारत के मानवीय और भौतिक दोनों प्रकार के संसाधनो का उपयोग चीन, मध्य एशिया और

अफ्रीका मे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के हितों को पूरा करने के लिए किया गया। 1945 मे जब इंग्लैंड में श्रमिक दल को संसद मे बहुमत प्राप्त हुआ तब नये मंत्रिमंडल ने भारत को स्वतंत्रता प्रदान की जब 15 अगस्त को भारत विभाजन हुआ और भारत पाक दो राज्य बने।

श्रीलंका

भारतीय प्रायद्वीप के एकदम नीचे श्रीलंका द्वीप है। जिसे 1948 मे उसी समय स्वतंत्रता प्राप्त हुई जब भारत और पाकिस्तान को हुई थी। उसकी आबादी मे सिंहली 70% है जिसमें तमिल मूल और यूरेशियायी भी सम्मिलित है। स्वशासन के प्रारभिक वर्षो मे सिंहली अपने औपनिवेशक स्तर से संतुष्ट रहे। ब्रिटिश राजा के प्रतिनिधि के रूप में एक गवर्नर जनरल था। और एक सीनेट तथा एक निर्वाचित प्रतिनिधि सभा मिलकर संसद का निर्माण करते थे। 1965 ई. में इसे गणराज्य घोषित किया गया, किन्तु यह ब्रिटिश राष्ट्रमंडल का सदस्य बना रहा। तटस्थ रहने के कारण श्रीलंका साम्यवादी और गैर-साम्यवादी दोनों ही प्रकार के देशों की मदद का लाभ उठा सका। युद्ध मे किसी भी एक तरफ ज्यादा झुकने की अपनी अनिच्छा पर बल देने के लिए सिंहली कोलंबो योजना की, जो कि 1951 में आरंभ हुई थी ओर जिसमें 21 देशों ने एशिया के देशों के विकास की योजनाओं के बारे में विचार-विमर्श की व्यवस्था की थी, सदस्यता स्वीकार कर ली।

दक्षिण-पूर्वी एशिया

दक्षिण-पूर्वी एशिया, चीन के दक्षिण मे वियतनाम से इंडोनेशिया तक एवं भारत के पूर्व मे बर्मा से फिलीपीन्स तक के क्षेत्र का सामूहिक नाम है। इस क्षेत्र मे अनेक द्वीप और एशिया महाद्वीप का दक्षिणी भूखंड भी सम्मिलित है। 1939-45 ई. के महायुद्ध तक ये सब किसी न किसी रूप मे पाश्चात्य देशों के प्रभुत्व मे थे।

दक्षिण-पूर्वी एशिया मे यूरोप के लोगों का प्रवेश

आधुनिक युग क आविर्भाव के पहले यूरोप का दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ संपर्क नगण्य था। प्रसारवादी यूरोप की दृष्टि इस क्षेत्र पर भी थी और इसमे भी पुर्तगालियों ने अग्रिम कदम रखा। 1510 में पुर्तगालियों ने मलक्का पर कब्जा कर लिया। पुर्तगालियों के पश्चात इस क्षेत्र में स्पेनवासियों ने रूचि लेना आरंभ कर दिया था। दक्षिण-पूर्व एशिया पर ब्रिटेन ने अपना रूख 1580 ई. के बाद किया, जब विख्यात फ्रॉसिस ड्रेक ने टर्नैट की यात्रा की थी। 1600 ई. में ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना के पश्चात इस ओर प्रगति हुई और इस कंपनी को उत्तमाशा अंतरीप एवं मैगेलन की खाड़ी के बीच के क्षेत्र मे 15 साल के लिए व्यापार की अनुमति मिली। बान्टम 1682 ई. तक ब्रिटिश व्यापार का मुख्यालय बना। इस क्षेत्र में ब्रिटेन को पुर्तगीज और डचो से सामना करना पड़ा।

व्यापारिक होड़ में हालैंड भी पीछे नही रहा और इस क्षेत्र मे प्रथम डच अभियान 1599 ई. में हुआ। डच व्यापारी सुमात्रा, बोर्नियों, सियाम, मनीला, केंटन एवं जापान तक पहुंचे। 17वीं सदी में चार डच-अंग्रेज युद्ध हुए। अंत में दक्षिण-पूर्व एशिया से ब्रिटिश व्यापारियों का निष्कासन हो गया और डच एकाधिकार की स्थापना हो गई। दक्षिण-पूर्व एशिया में इंडोनेशिया और हिंद-चीन दो बड़े समृद्ध और जनसंख्या एवं क्षेत्रफल की दृष्टि से महत्वपूर्ण राष्ट्र थे।

इंडोनेशिया

मलाया से न्यू गिनी तक फैला हुआ द्वीप समूह इंडोनेशिया कहलाता है। यह बहुलद्वीपीय राज्य है जिसमें 13,000 से अधिक द्वीप है। विदेशियों का आगमन, इंडोनेशिया के विविध द्वीपो मे बौद्ध और पौराणिक धर्मो की सत्ता 15वीं शताब्दी तक चलती रही। 15वीं शताब्दी मे अरब के मुसलमान ईस्ट इंडिया की ओर बढ़े। इस समय यहां के शासक कमजोर थे। अत: इन टापुओं पर भी इस्लाम का प्रभाव स्थापित हो गया था। 16वीं शताब्दी मे पुर्तगालियों ने इंडोनेशिया के द्वीपों मे आना जाना शुरू कर दिया। इस समय इन द्वीपों की राजनीतिक स्थिति अच्छी नही थी। इस स्थिति का पुर्तगालियों ने लाभ उठाया तथा राजनीतिक प्रभुत्व की स्थापना कर ली। 1511 मे पुर्तगालियों ने मलक्का को जीत लिया। बाद में रोमन पादरियों ने भी यहां आना जाना शुरू किया।

हॉलैंड का प्रभुत्व

17वीं शताब्दी में हालैंड के डच लोगों ने दक्षिण-पूर्वी एशिया के इन द्वीपों मे पहुंचन शुरू कर दिया। 1605 मे उन्होने अंबोन द्वीप पर कब्जा किया। 1641 मे पुर्तगालियों से मलक्का जीत लिया। हालैंड में डच इस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना की गई जिसने राजनीतिक दुर्बलता का लाभ उठाकर राजनीतिक प्रभुत्व की स्थापना का प्रयास किया। 18वीं शताब्दी के अंतिम वर्षो में फ्रांस में राज्य क्रांति हुई। फ्रांसीसी सेनाओं ने हालैंड को भी जीत लिया तथा नई क्रांतिकारी सरकार की स्थापना की। इस सरकार ने डच इस्ट इंडिया कंपनी को समाप्त कर इंडोनेशिया पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास किया। 1811-1819 तक इन द्वीपों पर ब्रिटेन का प्रभुत्व रहा, वियना कांग्रेस द्वारा ये प्रदेश पुन: हालैंड को सौंप दिया जाए।

हिन्द-चीन (वियतनाम) मे विदेशियों का प्रवेश

हिन्द-चीन दक्षिणी-पूर्वी एशिया मे फ्रांस के अधीन वह भू-भाग था, जो वर्तमान मे स्वतंत्र देश वियतनाम, कंबोडिया तथा लाओस के नाम से जाना जाता है। इस राज्य के पांच भू-भाग थे तथा फ्रांस की अधीनता मे होने के कारण ये पांचों प्रदेश यद्यपि एक ही राज्य के अंग थे पर राजनीतिक-सांसकृति दृष्टि से ये एक नही थे।

हिन्द-चीन में फ्रांस का प्रभुत्व: हिन्द-चीन में फ्रांस का प्रभुत्व वास्तविक रूप से 1747 से 1858 के बीच स्थापित हुई। इस काल के आंतरिक वर्षो में फ्रांस ने इस आशा से अवाम के साथ राजनयिक संबंध बनाए ताकि व्यापार आरंभ किया जा सके और डच एवं ब्रिटिश व्यापार पर आक्रमण का अड्डा बनाया जा सके। 1787 में फ्रांस और हिन्द-चीन के बीच पहली संधि पर हस्ताक्षर किए गए। इस संधि का उद्देश्य फ्रांस का राज्य विस्तार और कैथोलिक धर्म का प्रचार था। इस संधि के फलस्वरूप फ्रांसीसी पादरियों का प्रभाव इन प्रदेशों मे बढ़ता जा रहा था, किन्तु अनाम की सरकार इन्हें पसंद नही करती थी। 1858 में अनाम मे कार्य करने वाले अनेक फ्रांसीसी पादरियों पर हमले किए गए। फ्रांसीसी लोगों ने इसे अच्छा नही माना। परिणामस्वरूप फ्रांसीसी सेनाओं ने हिन्द-चीन में प्रवेश किया और अनेक स्थानों पर अधिकार कर लिया। मजबूर होकर 1863 में अनाम के राजा को संधि करनी पड़ी। इस संधि के अनुसार हिन्द-चीन फ्रांस के अधीन हो गया और अनाम के राजा ने एक कड़ी रकम हर्जाने के रूप में फ्रांस प्रदान करना स्वीकार किया। इस प्रकार 1863 मे हिन्द-चीन मे फ्रांस के प्रभुत्व का सूत्रपात्र हुआ।

नव साम्राज्यवाद

साम्राज्यवाद अपने परंपरागत रूप मे तो समाप्त हो चुका है, परंतु यह अपने एक आधुनिक परिवेश मे अथवा परिधान के साथ अभी-भी जीवित है। परम्परागत साम्राज्यवादी राज्य, विशेषकर पश्चिमी विकसित राज्य तथा संयुक्त राज्य अमेरिका अभी-भी अपनी नीतियों के द्वारा नये देशों की नीतियों को मनचाहें ढंग से चलाने के लिए कार्य कर रहे है। शस्त्र दौड़ को बढ़ावा देकर, शस्त्र आपूर्ति के द्वारा विदेशी सहायता के माध्यम से विश्व आर्थिक संस्थाओं पर अपने नियंत्रण द्वारा परोक्ष युद्ध नीति, अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों मे कूटनीति द्वारा तथा कई प्रकार के अन्य दबाव साधनों द्वारा मानव अधिकारों की रक्षा के नाम पर, परमाणु निरस्त्रीकरण के नाम पर, उदारीकरण और वैश्वीकरण के नाम पर कम शक्तिशाली या फिर विकासशील देशों पर अपना प्रभुत्व तथा दबदबा बनाये रखने की नीति का अनुसरण कर रहे है। इसे नव साम्राज्यवाद कहा जाता है। यह साम्राज्यवाद का आधुनिक स्वरूप है, जिसके विरूद्ध अभी संघर्ष किया जाना बाकी है। इस स्वरूप की समाप्ति अब विकाशील देशों की विदेश नीतियों का प्रमुख उद्देश्य है।

नव साम्राज्यवाद के लक्ष्य

नव साम्राज्यवद की उत्पत्ति तीन विशिष्ट परिस्थितियों से उत्पन्न हुई-

- युद्धोत्तर काल की शान्ति संधियां जिनके कारण नया शक्ति संतुलन।
- दूसरों को स्थायी रूप से अपने अधीन करने की इच्छा।
- कमजोर राज्यों का अस्तित्व।

प्रथम विश्व-युद्ध के प्रारंभ होने के कारण

1. **गुप्त संधिया**
2. **उपनिवेशवाद**
3. **सैनिकवाद**
4. **प्रेस एवं पत्रिकाओं का विकास**
5. **जनमत की अवहेलना**
6. **कूटनीतिक कारण**
7. **फ्रांस की प्रतिशोध की भावना**
8. **राष्ट्रीयता की भावना**
9. **आर्थिक साम्राज्यवाद**
10. **अंतर्राष्ट्रीय संगठन का अभाव**
11. **विलियम द्वितीय की अयोग्यता**
12. **पूर्वी समस्या**
13. **इटली की आकांक्षाएं**
14. **जर्मनी द्वारा परशियन नीति का अनुसरण**
15. **बोस्निया और हर्जेगोविना की समस्या**
16. **अंतर्राष्ट्रीय संकट**- 1905 से लेकर 1914 तक निम्नलिखित अंतर्राष्ट्रीय संकट उत्पन्न हुए जिन्होंने यूरोप के वातावरण को तनावपूर्ण बना दिया-
    (i) **रूस-जापान युद्ध**
    (ii) **मोरक्को संकट**
    (iii) **बोस्निया संकट**
    (iv) **बाल्कन युद्ध**
17. **तत्कालीन कारण**- आस्ट्रिया, हंगरी और सर्बिया में तनाव तो बोस्निया और हर्जेगोविना की समस्या के कारण ही था, लेकिन इसी बीच 28 जून, 1914 को आस्ट्रिया के राजकुमार ड्यूक फर्डिनेण्ड की बोस्निया में कुछ क्रांतिकारियों के द्वारा हत्या कर दी गई। इस पर आस्ट्रिया ने जो सर्बिया पर आक्रमण करने के लिए किसी अवसर की ताक में था, इस हत्या का सारा दोष उसी पर लाद दिया और जर्मनी से सहायता का आश्वासन पाकर आस्ट्रिया ने सर्बिया को युद्ध की चुनौती दे दी। इधर सर्बिया को रूस से सहायता का आश्वासन मिल गया। फलतः उसने आस्ट्रिया की अनेक शर्तों को ठुकरा दिया। अतः 28 जुलाई 1914 को आस्ट्रिया ने सर्बिया के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। रूस ने सर्बिया का पक्ष लेते हुए अपनी सेना की लामबन्दी की घोषणा कर दी। दूसरी ओर जर्मनी ने आस्ट्रिया का पक्ष लेते हुए 1 अगस्त, 1914 को रूस के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। 3 अगस्त, 1914 को जर्मनी ने फ्रांस के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। 4 अगस्त, 1914 को इंग्लैण्ड ने जर्मनी के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस प्रकार प्रथम विश्व युद्ध का भीषण वीभत्स दृश्य देखना पड़ा

प्रथम विश्व युद्ध के परिणाम

प्रथम विश्व युद्ध के परिणामों का विश्लेषण, विवेचन की सुविधा की दृष्टि से निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत किया गया है-

I. राजनीतिक परिणाम- प्रथम विश्व युद्ध के राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय राजनीति पर अनेक प्रभाव पड़े, उसके कुछ प्रमुख परिणामों का विवेचन निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत किया गया है-

1. राजतंत्रीय सरकारों का पतन
2. जनतन्त्रीय भावना का विकास
3. राष्ट्रीयता की भावना का विकास
4. अंतर्राष्ट्रीयता की भावना का विकास
5. अधिनायकवाद का उदय
6. अमेरिका का उत्कर्ष
7. जापान का उत्कर्ष

II. आर्थिक परिणाम- प्रथम विश्व युद्ध में विश्व को महान आर्थिक क्षति का सामना करना पड़ा। इस युद्ध में प्रत्यक्ष रूप से लगभग 10 खरब रुपये व्यय तथा अप्रत्यक्ष रूप से व्यय की गयी धनराशि का अनुमान लगाना कठिन है। अर्थशास्त्रियों का मत है कि 1915 में अकेले इंग्लैण्ड का युद्ध का व्यय 15 लाख पौण्ड प्रतिदिन था जो 1917-18 में बढ़कर 65 लाख पौण्ड प्रतिदिन हो गया। इस प्रकार युद्ध समाप्त होने के बाद सभी देशों पर राष्ट्रीय ऋण का अत्यधिक भार आ पड़ा। अनुमानतः फ्रांस पर 14,74,720 लाख फ्रेंक तथा जर्मनी पर 16,06,000 लाख मार्क राष्ट्रीय ऋण था। इसके अतिरिक्त उत्तरी फ्रांस, बेल्जियम, उत्तरी, इटली, रूस, पोलैण्ड, सर्बिया, आस्ट्रियन गेलेशिया आदि ऐसे राज्य थे जिन पर बड़े देशों का राजनीतिक प्रभुत्व था, उन्हें आर्थिक दृष्टि से शत्रु देशों ने बर्बाद कर दिया। इस आर्थिक विनाश के कुछ परिणाम निम्नलिखित थे-

1. उत्पादन क्षमता का ह्रास-
2. वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि
3. राष्ट्रीय ऋण भार
4. जनता पर विभिन्न करों का भार
5. बेरोजगारी

III. सामाजिक परिणाम- प्रथम विश्व युद्ध के परिणामस्वरूप अनेक सामाजिक परिणाम सामने आये, जो निम्नलिखित है-

1. जन-हानि
2. महिलाओं के सामाजिक स्तर में सुधार
3. जातीय कटुता की भावना में कमी
4. श्रमिकों में जागृति
5. शिक्षा की प्रगति व विकास

IV. समाजवाद का विकास

V. वैज्ञानिक प्रगति

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रथम विश्व युद्ध की घटना केवल यूरोप में ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण विश्व के इतिहास की दिशा को बदलने वाली घटना थी, जिसने विभिन्न देशों के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व वैज्ञानिक जीवन पर क्रांतिकारी प्रभाव डाला था। युद्ध में अपार जन-धन की हानि हुई। एक तरफ विजेता पक्ष को पेरिस की संधि में निश्चित की गयी क्षतिपूर्ति से संतोष नहीं हुआ तो दूसरी तरफ विजित देशों को संधि की शर्तों को स्वीकार करने को बाध्य होना पड़ा। इस प्रकार विश्व में स्थायी शांति स्थापित न हो सकी और विश्व को पुनः एक बार महायुद्ध के विंध्वसकारी दृश्य को देखना पड़ा।

द्वितीय विश्व

1 सितम्बर, 1939 के प्रातःकाल जर्मन सेना पोलैण्ड में प्रविष्ट हो गई और इसके साथ ही द्वितीय विश्व युद्ध का श्रीगणेश हो गया। इंग्लैण्ड और फ्रांस ने भी इसके तत्काल बाद जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। 11 जून, 1940 को इटली जर्मनी की ओर से युद्ध में सम्मिलित हो गया। 22 जून, 1941 को जर्मनी ने सोवियत संघ पर आक्रमण कर दिया और सोवियत संघ मित्र राष्ट्रों या इंग्लैण्ड के साथ मिलकर युद्ध करने लगा। दिसम्बर, 1941 में जापान के विरुद्ध युद्ध में संलग्न हो गये। इस युद्ध ने शीघ्र विश्वव्यापी रूप धारण कर लिया। प्रारंभ में इसमें जर्मनी और जापान को सफलताएँ मिलीं परंतु अन्ततः मई, 1945 में जर्मनी और अगस्त, 1945 में जापान परास्त हो गया और इसी के साथ द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति हो गई।

द्वितीय विश्व युद्ध के कारण

- **वर्साय की अन्यायपूर्ण संधि**
- **राष्ट्रसंघ की अकर्मण्यता**
- **निःशस्त्रीकरण की असफलता**
- **हिटलर का उदय**
- **प्रजातन्त्रीय तथा एकतन्त्रीय विचारधाराओं में संघर्ष आर्थिक संकट**
- **उग्र राष्ट्रवाद**
- **स्पेन का गृह-युद्ध**
- **साम्राज्यवाद**
- **तुष्टीकरण की नीति**

- **अन्य कारण** - इंग्लैण्ड और फ्रांस का रूस से समझौता किये बिना पोलैण्ड को गारण्टी देना बहुत बड़ी गलती थी क्योंकि युद्ध होने पर वे पोलेण्ड की कोई सीधी सहायता नहीं कर सकते थे। उधर पोलैण्ड भी इस बात पर अड़ा हुआ था कि वह रूसी सेना को अपने प्रदेशों में घुसने नहीं देगा। इंग्लैण्ड और फ्रांस ने पोलेण्ड पर दबाव डालकर उसे नाजी सेना का शिकार हो जाने दिया। रूस ने हिटलर से अनाक्रमण सन्धि कर हिटलर को युद्ध आरंभ करने के लिए प्रोत्साहित किया क्योंकि हिटलर से अनाक्रमण सन्धि कर हिटलर को युद्ध आरंभ करने के लिए प्रोत्साहित किया क्योंकि हिटलर को इससे दो मोर्चो पर लड़ने का भय दूर हो गया। यह रूस की स्वार्थपूर्ण और अदूरदर्शी नीति थी जिसके घातक परिणाम उसे शीघ्र ही भुगतने पड़े। इसके अतिरिक्त अमेरिका ने ऐसे तनावों के समय तटस्थता की नीति अपनाकर अप्रत्यक्ष रूप से हिटलर को युद्ध के लिए प्रोत्साहित किया।
- **तात्कालिक कारण** - जब हिटलर की मांग पर पोलैण्ड ने डेंजिग देने से इनकार कर दिया तो 1 सितम्बर, 1939 को उसने पोलैण्ड पर आक्रमण कर दिया। इस पर इंग्लैण्ड ने हिटलर को पोलैण्ड से जर्मन सेनाएँ हटाने की चेतावनी दी। परंतु हिटलर ने इस चेतावनी पर कोई ध्यान नहीं दिया। फलस्वरूप इंग्लैण्ड ने 3 सितम्बर, 1939 को जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और कुछ ही घण्टे पश्चात् फ्रांस ने भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस प्रकार द्वितीय महायुद्ध का सूत्रपात हुआ।

  अत: निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि अपनी मौलिक नीति और कार्यक्रम के अनुसार हिटलर द्वितीय विश्व युद्ध के लिए उत्तरदायी था, किंतु इंग्लैण्ड, फ्रांस, रूस, अमेरिका आदि भी पूर्ण रूप से निर्दोष नहीं थे।

द्वितीय विश्व युद्ध के परिणाम

1939 से 1945 तक लड़ा गया यह युद्ध अपने परिणामों के अनुसार युगांतकारी माना जाता है। फ्रांस की क्रांति के बाद जिन नई प्रवृत्तियों का उदय हुआ था, वे अब पुरानी महसूस की जाने लगी और मानव सभ्यता उस दौर से निश्चित हो आगे बढ़ गई। यह युद्ध केवल जानमाल की अत्यधिक क्षति के कारण ही भयंकर सिद्ध नहीं हुआ बल्कि इस युद्ध में जिन प्रतीकों व हथियारों का सहारा लिया गया तथा युद्ध के दौरान ही जिस विचारधारा की टकराहट का सूत्रपात हुआ, उसने भावी राजनीति की दशा और दिशा ही बदल दी।

प्रथम विश्व युद्ध के बाद जिस तरह पेरिस/वर्साय जैसी संधियां अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के हल के लिये की गई थी, वैसी व्यवस्था इस युद्ध के बाद नहीं की जा सकी। जिसका प्रमुख कारण था, कि युद्ध के समय के मित्र राष्ट्र युद्ध के बाद शत्रु बन चुके थे। अत: इन परिस्थितियों में अलग-अलग संधियां की गई जिसके तहत-

1. इटली को अपने उपनिवेशों को त्यागना पड़ा और उसके अन्य प्रभुत्व के क्षेत्र भी उसकी संप्रभुता बाहर आ गये।
2. सोवियत संघ ने चेकोस्लोवाकिया के पूर्व की तरफ, पूर्वी पोलैण्ड और बाल्टिक राज्यों पर आधिपत्य जमा लिया।
3. 1951 के सैन फ्रांसिस्को सम्मेलन में सबसे महत्वपूर्ण समर्पण के रूप में जापान ने अपने उन सारे जीते हुए क्षेत्रों को लौटाने की घोषणा की, जो उसने पिछले 90 सालों के अथक प्रयास से हासिल किये थे।

   जब कोई सामूहिक समझोते की बात न हो सकी, तो विवशता थी कि विश्व व्यवस्था को आगे ले जाने के लिये अलग-अलग देशों या छोटे समूहों से ही संधि की जायें। इस युद्ध के बाद महत्वपूर्ण नेताओं ने यह जरूर सीख लिया था कि यदि धुरी राष्ट्रों के साथ प्रथम विश्व युद्ध जैसा ही बर्ताव किया गया तो अगले युद्ध की संभावना को नकारा नहीं जा सकता। अर्थात् अब हारे हुए राष्ट्रों को युद्ध अपराधी घोषित कर उन्हें अपमानित नहीं किया गया। इस तरह द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यूरोप के भूगोल में पुन: परिवर्तन तो आया, परंतु वह उतना क्रांतिकारी नहीं था जितना कि नेपोलियन की विजय के बाद (वियना सम्मेलन) या फिर प्रथम विश्व युद्ध के बाद के परिवर्तन थे।

   प्रथम विश्वयुद्ध की तुलना में द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणाम अपने विस्तार एवं तीव्रता में अधिक व्यापक स्वरूप लिए हुए थे। जनधन की हानि तो सभी युद्धों में होती है। किंतु द्वितीय विश्वयुद्ध में एटमी हथियारों के प्रयोग ने मानव के अस्तित्व को ही संकट में डाल दिया। इस युद्ध के पश्चात् विश्व राजनीति के रंगमंच से यूरोप का पटाक्षेप हो गया और उसकी जगह अमेरिका रंगमंच पर मुख्य नायक के तौर पर अवतरित हुआ। इतना ही नहीं युद्धोपरांत विश्व दो गुटों में स्पष्टत: विभाजित हो गया, फलत: शीतयुद्ध की पृष्ठभूमि का निर्माण हुआ। इस गुटबंदी से बचने के लिए नवस्वतंत्र तृतीय विश्व के देशों ने गुटनिरपेक्ष आंदोलन को जन्म दिया। अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था को बनाए रखने हेतु राष्ट्रसंघ की अपेक्षा कही अधिक व्यापक अधिकार वाली संयुक्त राष्ट्रसंघ जैसी संस्था का निर्माण हुआ।

राजनीतिक परिणाम

1. **यूरोप का पतन**
2. **यूरोप के राजनीतिक मानचित्र में परिवर्तन**
3. **दो महाशक्तियों का उदय**
4. **शीतयुद्ध का आरंभ**
5. **उपनिवेशवाद का पतन व तृतीय विश्व का उद्‌भव**
6. **गुटनिरपेक्ष आंदोलन का उद्‌भव**
7. **संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना**
8. **प्रादेशिक संगठनों का विकास**
9. **शक्ति संतुलन के स्थान पर आतंक संतुलन की स्थापना**
10. **भारत पर प्रभाव :** द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान जापानी सेनाओं ने दक्षिण-पूर्व एशिया में अंग्रेजी फौज के जिन हिंदुस्तानी सिपाहियों को युद्धबन्दी बनाया था उन्हें प्रेरित एवं उत्साहित कर बोस ने आजाद हिंद फौज का गठन किया। 'दिल्ली चलो' और 'जय हिंद' का नारा बुलंद कर फौज ने हिन्दुस्तान की तरफ कूच किया और अंग्रेजों के लिए समस्या पैदा की।

    द्वितीय विश्वयुद्ध में ब्रिटेन द्वारा भारत को जबरन शामिल किए जाने के विरोध में 1939 कांग्रेस की सरकारों ने त्यागपत्र दे दिया और आगे चलकर भारत छोड़ो आंदोलन प्रारंभ हुआ। आगे चलकर भारत को स्वतंत्रता हासिल हुई। इस तरह यह स्पष्ट हो गया कि साम्राज्यवाद और संसार की सबसे बड़ी साम्राज्यवादी ताकत का सूर्य अस्त हो चुका है।
11. **चीन पर प्रभाव**
12. **पश्चिम एशिया पर प्रभाव**

द्वितीय विश्व युद्ध में सांस्कृतिक प्रभाव :

द्वितीय विश्व युद्ध ने जिस सांस्कृतिक ज्वार को उभारा उसके दूरगामी सामाजिक एवं राजनीतिक परिणाम हुए। महायुद्ध के बाद वर्ष निराशा, हताशा एवं विश्व व्यापी कुण्ठा का युग था। किर्केगार्ड जैसे दार्शनिक का अस्तित्ववादी चिंतन यूरोप तथा अमेरिका में लोकप्रिय बना।

ब्रह्मांड में मनुष्य के अस्तित्व की नगण्यता और अर्थहीनता की अनुभूति ने धार्मिक व नैतिक मूल्यों में तेजी से ह्रास किया ओर सामाजिक उच्छश्रृंखला को बढ़ावा दिया। उसने जहां एक ओर पश्चिमी पूंजीवादी समाज में बीटनकों और बाद में हिप्पियों को प्रतिष्ठा दिलवाई तो दूसरी ओर साहित्य और कला के क्षेत्र में अमूर्तनों, स्वात: सुखाय तथा निरंकुश उद्‌गारों की अभिव्यक्ति वाली कलाकृतियों के सृजन को प्रोत्साहन दिया। पोप आर्ट, रॉक म्यूजिक आदि इसी के उदाहरण है।

कलाओं में पिकासो की प्रसिद्ध कलाकृति 'गोयरनिका' एवं 'लोरका' की कविताएं स्पेनी गृहयुद्ध से प्रेरित थी। कामू का उपन्यास प्लेग, भी इसी कोटि में आते हैं। युद्ध की विभीषिका महानगरीय संत्रास, अलगाव आदि की अनुभूति जो आधुनिक साहित्य कला जगत का अभिन्न अंग बन चुकी है द्वितीय विश्वयुद्ध की देन है।

परमाणु युग की शुरूआत

इस युद्ध का अंत अमेरिका द्वारा हिरोशिमा पर परमाणु बम गिराने से हुआ। किंतु वास्तव में इसे घटना ने मानव जीवन को भय और आशंकाओं से युक्त कर दिया। अमेरिका के बाद शीघ्र ही USSR व रूस ने शीघ्र ही यह क्षमता हासिल कर ली, जिससे समाज आतंकित होने लगा। अन्य देशों ने भी इस क्षमता को हासिल करने का प्रयास किया जिससे विश्व को यह सोचना पड़ा कि इन WMD से भयमुक्ति कैसे दिलाई जाये और इसी संदर्भ में NPT व CTBT जैसी महत्वपूर्ण संधियां की गई। इसका अप्रत्यक्ष लाभ यह भी देखा गया कि लोग युद्ध से बचने लगे। इसलिये कुछ विद्वान 'शक्ति संतुलन' के युग की समाप्ति और 'आतंक संतुलन' के युग की शुरूआत बताते है।

इसके अतिरिक्त युद्ध में अन्य वैज्ञानिक उपकरणों ने भी निर्णायक भूमिका निभाई थी, जिसमें सबसे प्रमुख लड़ाकू विमान सिद्ध हुए थे। अत: इसी के बाद रडार, मिसाइलों का प्रयोग भी शुरू हो गया। अर्थात् अब विज्ञान व तकनीक के विकास ने युद्ध का स्वरूप ही बदल दिया और इसी समय से यह चर्चा शुरू हुई कि विज्ञान अभिशाप है या वरदान। वास्तव में मनुष्य ने परमाणु बम बनाकर अतिमानवीय शक्ति तो हासिल कर ली, परंतु उसकी बुद्धि अतिमानव तक उन्नत नहीं हुई और इसीलिये यह संकट की स्थिति बन गई।

द्वितीय विश्व युद्ध का विज्ञान पर प्रभाव :

1. द्वितीय विश्व के दौरान सामरिक प्राथमिकताओं ने वैज्ञानिक व तकनीकी शोध को तीव्रतर बनाया। रडार, जेटविमान, रेडियो, टेलिविजन जैसे साधनों पर बड़े पैमाने पर पूँजी निवेश की गयी। यह बात परमाणु विज्ञान में भी लागू होती है। मित्र और धुरी राष्ट्रों को इस बात का अच्छी तरह से आभास था कि जो खेमा वैज्ञानिक एवं तकनीकी आविष्कारों के दौर में पिछड़ेगा वही पराजित होगा। इतना ही नहीं युद्ध मोर्चे की व्यापक जरूरतों के लिए औद्योगिक उत्पादन की वैज्ञानिक प्रणालियां खोजी गयी।
2. युद्धकालीन प्रचार, तंगी एवं राशनिंग वाली अर्थव्यवस्था ने युद्धोत्तर काल में वैज्ञानिक व तकनीकी विकास को अन्य समस्त आर्थिक क्रियाकलापों के साथ केंद्रित और नियोजित करना सहज बनाया।
3. युद्ध के दबाव में रबड़, खनिज, आदि कच्चे मालों को थोड़े या अधिक समय के लिए अनुपलब्ध बनाकर कृत्रिम विकल्पों का आविष्कार किया। प्लास्टिक, रेयान, हल्की मिश्र धातु, चमत्कारिक औषधियां आदि बहुत बड़ी सीमा तक द्वितीय विश्व युद्ध की देन है।
4. सामरिक जरूरतों के अनुसार जर्मन के वैज्ञानिक के V-2 प्रक्षेपास्त्रों का आविष्कार किया। ये इन राकेटों के पूर्वज थे जो आज हमें अंतरिक्ष में विजय दिला रहे हैं।

''किसी अन्य घटना ने विश्व राजनीति को इतना प्रभावित नहीं किया जितना की द्वितीय विश्व युद्ध ने'' द्वितीय विश्व युद्ध के राजनीतिक परिणामों की समीक्षा करें ।

प्रथम विश्वयुद्ध की तुलना में द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणाम अपने विस्तार एवं तीव्रता में अधिक व्यापक स्वरूप लिए हुए थे। द्वितीय विश्व युद्ध में एटमी हथियारो के प्रयोग नें मानव के अस्तित्व को ही संकट में डाल दिया। इस युद्ध के पश्चात विश्व राजनीति के रंगमंच से यूरोप का पटाक्षेप हो गया और उसकी जगह अमेरिका रंगमंच पर मुख्य नायक के तौर पर अवतरित हुआ। इस प्रकार द्वितीय विश्व युद्ध के परिणाम निम्न बिंदुओ के रूप में दृष्टिगोचर होते है।-

1. यूरोप के राजनैतिक मानचित्र में परिवर्तन
2. दो महाशक्तियो का उदय
3. शीतयुद्ध का आरंभ
4. उपनिवेशवाद का पतन व तृतीय विश्व का उद्भव
5. गुटनिपेक्ष आंदोलन का उद्भव
6. संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना
7. प्रादेशिक संगठनों का विकास

इस प्रकार द्वितीय विश्व युद्ध के व्यापक परिणाम निकले जिसने विश्व राजनीति व मानव जाति झकझोर कर रख दिया। तथा इसके बाद विश्व समुदाय ने ऐसे समग्र प्रयास किए ताकि भविष्य में मानव समुदाय को इस त्रासदी का सामना न करना पड़े।

अतिलघुत्तरीय प्रश्न

वर्साय की संधि-प्रथम विश्वयुद्ध के बाद 1919 में सम्पन्न हुई, पांच राष्ट्रों के बीच यह शांति संधि थी। फ्रांस, जर्मनी, ब्रिटेन, आस्ट्रिया, हंगरी और अमेरिका ने इसमें भाग लिया था बाद में अमेरिका अलग हो गया इसमें जर्मनी की शक्तियों को अत्यधिक सीमित कर दिया गया।

दाँते

- इटली के महान कवि
- पूनर्जागरण के अग्रदूत के नाम से प्रसिद्ध
- डिवाइन कॉमेडी की रचना इटली की सामान्य बोल था, की भाषा में किया जिसमें स्वर्ग एवं नरक की एक काल्पनिक यात्रा का वर्णन है।
- **लीग आॅQ ने'ास :** बुडरों विल्सन के मस्तिष्क की देन, यह एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन था, जिसे प्रथम विश्व युद्ध के बाद अंतर्राष्ट्रीय विवादों के निपटारे हेतु एक मंच के रूप में बनाया गया। यह UNO का अग्रदूत था। (मुख्यालय - जेनेवा, स्विटरजलैण्ड)

मैकियावेली :

- आधुनिक विश्व का प्रथम राजनीतिक चिन्तक फ्लोरेंस निवासी **मैकियावेली** (1469-1567 ई.) को माना जाता है।
- **मैकियावेली की प्रसिद्ध पुस्तक है : द प्रिन्स,** जो राज्य का एक नवीन चित्र प्रस्तुत करती है।
- आधुनिक राजनीतिक दर्शन का जनक **मैकियावेली** को कहा जाता है।

लियोनार्दो द विंची:

- चित्रकार, मूर्तिकार, इंजीनियर, वैज्ञानिक, दार्शनिक, कवि और गायक।
- लियोनार्दो द विंची **'द लास्ट सपर'** और **'मोनालिसा'** नामक अमर चित्रों के रचयिता होने के कारण प्रसिद्ध है।

माइकल एंजेलो:

- अद्‌भुत मूर्तिकार एवं चित्रकार।
- **'द लास्ट जजमेंट'** एवं **'द फाल ऑन मैन' माइकल एंजलो** की कृतियाँ है।
- सिस्तान के गिरजाघर की छत में **माइकल एंजेलो** के द्वारा ही चित्र बनाये गये है।

मार्टिन लूथर :

- जर्मनी निवासी।
- धर्म-सुधार आन्दोलन की शुरुआत का प्रवर्तक।
- जर्मन भाषा में बाइबिल का अनुवाद प्रस्तुत किया है।

नेपोलियन कोड

- नेपोलियन ने प्रथम कौसिंल के रूप में विभिन्न नागरिक कानूनों का संकलन करवाया। जिसे ''नेपोलियन कोड'' कहा जाता है।

लघुउत्तरीय प्रश्न

द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रमुख घटनाएं

उत्तर-द्वितीय विश्वयुद्ध का आरंभ 1 सितम्बर, 1939 को पोलैण्ड पर जर्मनी के आक्रमण के साथ हुआ। 3 दिन बाद फ्रांस तथा इंग्लेण्ड भी युद्ध में सम्मिलित हो गये। वर्ष 1940 में जर्मनी ने डेनमार्क, नार्वे, बेल्जियम तथा नीदरलैंड पर अधिकार कर लिया। मई 1940 में इग्लैण्ड में, जर्मनी तथा इग्लैण्ड के मध्य युद्ध हुआ जिसमें हिटलर को वापस हटना पड़ा। वर्ष 1941 में जर्मनी ने रूस पर हमला बोल दिया तथा ब्रिटेन से लड़ायी जारी रखी। 1941 में ही जापानी एयर फोर्स ने अमेरिकी एयरबेस पर्लहार्बर पर हमला किया तथा इसी के साथ सं.रा. अमेरिका भी युद्ध में प्रविष्ट हुआ। वर्ष 1942 में जर्मनी की स्टालिनग्रांड में हार, सिंगापुर का पतन, प्रशान्त युद्ध में यूएसए की विजय तथा यहूदियों के नरसंहार की घटनाये हुई। वर्ष 1943 में रूस में जर्मनी की

हार, इटली का आत्मसमर्पण तथा 1944 में मित्र राष्ट्र की सेनाओं का फ्रांस पर पुन: अधिकार (D-day) तथा 1945 में जर्मनी की हार हिटलर की मृत्यु व जापान पर परमाणु बम गिराया जाना प्रमुख घटना रही।

पुनर्जागरण में इटली के योगदान की समीक्षा करें।

17 वीं शताब्दी में पूनजार्गरण लाने में इटली का पूरे यूरोप में महत्वपूर्ण योगदान रहा है क्योंकि उस यूग के इटली के नगर पूर्वी देशों के साथ व्यापार करके धनी बन चूके थे, और वे संस्कृति को प्रोत्साहित करने में समर्थ थे। यहाँ के नगरो के नये धनिको ने अपने लिए विशाल नृत्य भवन बनवाये और उन्हें चित्रों तथा मूर्तियों से सजाने के लिए कलाकारों को उत्साहित किया, जिसने एक तरह से पुनजार्गरण की नींव रखी।

मध्य युग मे जहाँ अधिकाश यूरोपीय नगर तथाकथित अन्धकार में डूबे हुऐ थे, तब भी इटली के नगर जीवित थे, एक-दूसरे के साथ विचारों का आदान-प्रदान करते थे तथा इन स्वतंत्र नगरों में सम्पन्न लोगों ने कलाकारों और साहित्कारो और विचारकों को आश्रय एवं सम्मान दिया जिसमें आगे चलकर पेट्राक, दाँते, लियोनार्दो-द-विसी इत्यादि को मुख्य पटल पर लाया और ये लोग पुर्जागरण के अग्रदूत बने।

मित्र राष्ट्र बनाम धुरी राष्ट्र

प्रथम विश्व युद्ध में पूरा विश्व एक तरह से दो ध्रुवों में विभाजित हो गया था, जहाँ एक ध्रुव मित्र राष्ट्र के रूप में इंग्लैण्ड, फ्रांस, रूस, सर्बिया, जापान, इटली, चीन, यूनान, ब्राजील आदि बाद में अमेरिका भी सम्मिलित हो गया तथा दुसरा ध्रुव धुरी राष्ट्र (जर्मनी, आस्ट्रिया, हंगरी, बुल्गारिया, और टर्की) के रूप में युद्ध में भाग लिया। इस विश्व युद्ध में मित्र राष्ट्रों की विजय हुई और धुरी राष्ट्र के ऊपर विभिन्न प्रकार के प्रतिबन्ध, सन्धियों के माध्यम से लगाया गया।

प्रथम विश्व युद्ध के परिणाम स्वरूप हुई, इन संधियों ने आगे चलकर द्वितीय विश्व युद्ध हेतु पृष्ठभूमि का निर्माण कर दिया। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् जहाँ एक तरह से धूरी राष्ट्रो का पतन हो गया वहीं मित्र राष्ट्रो में रूस एवं अमेरिका के रूप द्विघुरीय विश्व की नींव पड़ी।

'आंग्जबर्ग की संधि' ।

रोमन शासक चार्ल्स द्वितीय ने जर्मन राज्यो में शांति स्थापित करने के लिए अपने भाई फर्डिनेन्ड को नियुक्त किया। कैथोलिक एवं प्रोटेस्टेंटो के मध्य 1555 में **''आंग्जबर्ग''** की संधि हुई। इसके अनुसार-

1. प्रोटेस्टेंट धर्म को एक स्वतंत्र धर्म के रूप में मान्यता।
2. चर्च को भविष्य में सम्पति अधिकृत करने का अधिकार नही।
3. राजा का धर्म ही राज्य का धर्म होगा।

बाल्कन संकट क्या था ?

बाल्कन (मध्य पूर्व) को लेकर समस्त यूरोपीय देशो के मध्य विवाद था। आस्ट्रिया का रूस व सर्बिया से विवाद था। आस्ट्रिया ने 1908 में बोस्निया व हर्जेगोबिना पर अधिकार कर लिया। आस्ट्रिया अपनी सीमा का विस्तार कुस्तुनतुनिया तक चाहता था। बोस्निया व हर्जेगोबिना में स्लाव जाति के लोग रहते थे। सर्बिया एक स्लाव राज्य गठित करना चाहता था। रूस की मदद से सर्बिया यह कर सकता था।

इसी समय बाल्कन राष्ट्र हंगरी में रूमेनियावासियो पर अत्याचार हो रहे थे। इससें आस्ट्रिया-हंगरी व रूमानिया के मध्य तनावपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गई थी। इन बाल्कन राष्ट्रो के मध्य तनाव की यह स्थिति आगे चलकर प्रथम विश्व युद्ध का कारण भी बनी।

6.यूरोप मे औद्योगिक क्रांति के पांच कारण बताएं

- पुनर्जागरण का प्रभाव जिससे वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नई खोज तथा आविष्कारों को प्रोत्साहन मिला।
- व्यापार के विस्तार ने उत्पादन को बढ़ाना आवश्यक बना दिया।
- पत्थर के कोयले की उपलब्धि।
- वाणिज्यवाद से संचित धन।
- मनुष्य ने अपने जीवन को उन्नत बनाने का प्रयास किया क्योकि वह भौतिकवाद से प्रभावित थे।

7. औद्योगिक क्रांति इंग्लैण्ड मे ही क्यों शुरू हुई?

औद्योगिक क्रांति इंग्लैण्ड मे ही प्रारंभ होने के कई कारण थे जिनमे पांच प्रमुख कारण निम्नलिखित है-

- अनुकूल राजनीतिक स्थिति।
- कोयले व लोहे की खानों का पास-पास होना।
- विशाल औपनिवेशिक साम्राज्य।
- इंग्लैण्ड की नौ-सैनिक श्रेष्ठता।
- सर्वप्रथम इंग्लैंड मे ही बैंकिंग प्रणाली का विकास हुआ।

औद्योगिक क्रांति के सामाजिक प्रभाव संक्षेप मे बताए

औद्योगिक क्रांति के सामाजिक क्षेत्र मे अनेक प्रभाव हुए जिनमें कुछ प्रमुख निम्नलिखित है-

- संयुक्त परिवार प्रथा दूर होने लगी क्योकि एक तो व्यक्ति को परिवार के सदस्यों से अलग रहकर लम्बे समय तक कारखाने मे काम करना पड़ा था। इसके अतिरिक्त काम जानने की इच्छा व यातायात के साधनों के विकास से श्रम गतिशीलता बढ़ी जिससे संयुक्त परिवार प्रथा का पतन प्रारंभ हुआ।
- जनसंख्या का स्थानान्तरण भौगोलिक एवं व्यावसायिक दोनों दृष्टियों से।
- गंदी बस्ती एवं जनस्वास्थ्य की समस्या।
- सामाजिक तनाव मे वृद्धि व नैतिकता के स्तर मे गिरावट।
- जीवन स्तर में उन्नति एवं मनोरंजन के साधनों का विकास।

औद्योगिक क्रांति के कुछ आर्थिक प्रभाव बताएं

- उत्पादन में वृद्धि तथा लागत मे कमी।
- घरेलू उद्योगों का विनाश क्योकि कारखानों से निर्मित वस्तु अपेक्षाकृत सस्ती तथा सुंदर होती थी। इसी के परिणामस्वरूप बेरोजगारी की समस्या अधिक उग्र रही।
- राष्ट्रीय बाजारों का संरक्षण।
- संयुक्त कंपनियों का विकास।
- नए एवं बड़े नगरों का उदय क्योकि जनसंख्या का गांवो से शहरों की ओर पलायन हुआ।

''साम्राज्यवाद का विकास औद्योगिक क्रांति का अनिवार्य परिणाम था।'' स्पष्ट कीजिए

औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप उत्पादन की मात्रा बढ़ने लगी और कच्चे माल की भी उत्तरोत्तर आवश्यकता बढ़ती गयी। अत: उत्पादित माल को खपाने के लिए अधिकाधिक बाजार की प्राप्ति की आवश्यकता हुई जिसकी पूर्ति उपनिवेशों की स्थापना से संभव थी। इसलिए 10वीं शताब्दी मे उपनिवेशवाद का आधुनिक स्वरूप साम्राज्यवाद सामने आया। इंग्लैंड मे औद्योगिक क्रांति सबसे पहले हुई थी इसलिए साम्राज्यवादी होड़ में वह बहुत आगे निकल गया था। इस प्रकार साम्राज्यवाद का विकास औद्योगिक क्रांति का अनिवार्य परिणाम थी।

औद्योगिक क्रांति का आशय

उन परिवर्तनों को जिनसे घरेलू उत्पादन पद्धति की जगह विशाल कारखानों मे बड़ी मात्रा मे वस्तुओं का उत्पादन हुआ, उसे औद्योगिक क्रांति संज्ञा दी जाती है। ये परिवर्तन 18वीं शताब्दी मे दृष्टिगोचर होने शुरू हो गए थे।

औद्योगिक क्रांति शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किसने किया

फ्रांस के एक समाजवादी नेता **लुई ब्लांडी** ने औद्योगिक क्रांति शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किया।

रूस मे औद्योगिक क्रांति सबसे अंत मे क्यों शुरू हुई

रूस मे सामन्तवादी सामाजिक संगठन के कारण कृषि दास प्रथा का अंत 1861 मे हुआ। इसके अलावा पूंजी, तकनीकी एवं उद्यमशीलता की कमी थी।

साम्राज्यवाद

साम्राज्यवाद से तात्पर्य किसी पूंजीवादी देश द्वारा पूर्व पूंजीवादी देश पर राजनैतिक-सामाजिक-आर्थिक नियंत्रण स्थापित किये जाने से है। मुख्यत: यह संकल्पना आर्थिक शोषण को महत्वपूर्ण मानती है और इसके लिए प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष राजनीतिक नियंत्रण किया जाता है। जैसे-

भारत में अंग्रेजों ने प्रत्यक्ष नियंत्रण अपनाया तो बीसवीं सदी में अफ्रीकी देशों को आर्थिक सहायता देकर उनको नीतियों को साम्राज्य के हितों के अनुसार संचालित किया।

लोक देवी-देवताओं और सन्तों का योगदान

समय-समय पर उत्कृष्ट कार्य, बलिदान, उत्सर्ग एवं परोपकार करने वाले महापुरूष लोकदेवता के रूप में पूजनीय हुए। राजस्थान में ऐसे लोकदेवताओं में बाड़मेर के रामदेवजी तंवर, जोधपुर के पाबूजी राठौड़, चूरू के गोंगाजी चौहान, नागौर के तेजाजी जाट, आसींद के देवनारायणजी गुर्जर, मारवाड़ के कल्लाजी राठौड़ एवं अन्य अनेक लोक देवता हुए जिन्होंने अपने आत्मोत्सर्ग द्वारा सादा व सदाचारी जीवन बिताने के कारण अमरत्व प्राप्त किया। इन्होंने राजस्थान की सामाजिक सांस्कृतिक प्रगति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जिसे निम्नलिखित बिन्दुओं के तहत स्पष्ट किया जा सकता है:

1. **सामाजिक सुधारक के रूप में :** सभी लोक देवताओं ने अस्पृश्यता, जाति-पांति, छुआछूत, ऊँच-नीच का भेदभाव आदि बुराईयों का निराकरण कर निम्न वर्ग के दयनीय स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयास किया।
2. **कष्टों के निवारक के रूप में :** इन्होंने अपने विचारों से बांझ को पुत्र, अंधे को आंख, लूले को पैर, कोढ़ी को स्वास्थ्यता प्रदान की। लोक आस्था से सरोबार समाज अपने कष्टों की व्यथा, कथा को इनके स्थानों एवं चिंत्रों के सामने सुनाकर जाण पाते है।
3. **आपसी मेल मिलाप एवं समरसता को बढ़ावा :** लोकदेवों के स्थानों पर लगने वाले मेलों में विभिन्न क्षेत्रों एवं वर्गो के लाखों लोग मिलते है। जिससे उनमें आपसी मेल मिलाप पारस्परिक सौहार्द उत्पन्न होता हैं क्योंकि इन लोक देवों में सभी जातियों को बिना भेदभाव के एक साथ समरतापूर्वक रहने का संदेश दिया था।
4. **उद्धारकर्ता एवं संस्कृति के संरक्षक के रूप में :** इन लोक देवताओं ने आत्ताइयों के अत्याचारों से देश, धर्म, गाय, ब्राह्मण एवं मातृभूमि की रक्षा कर धर्म का पालन कर इसे अक्षुण्ण रखा। बाहरी आक्रमणकारियों से हमारी संस्कृति को दूषित होने से बचाया।
5. **उच्च सांस्कृतिक मूल्यों को बढ़ावा :** इन्होंने आत्मज्ञान, साधना, आत्मकल्याण, त्याग, सत्य, निष्ठा, ईमानदारी, कर्तव्य, परायणता, न्याय, सद्मार्ग की प्रेरणा आदि उच्च सांस्कृतिक आदर्शों का पालन कर एवं बोलचाल की भाषा में व्यक्त कर लोगों को इन मूल्यों को मानने के लिए प्रेरित किया।
6. **भक्ति भावना के विकास में योगदान :** इन्होंने तत्कालीन राजस्थान की अशिक्षित, खेतीहर एवं निम्न जातियों में नवीन भक्ति भावना को प्रस्फुटित किया। लोग जटिल आराधना पद्धति को त्याग गांव-गांव में इनके देवरे, मंदिर आदि बनाकर सहज भक्ति एवं भावना से उन्हें पूजने लगे।
7. **एकता, ध्यान व नैतिक मूल्यों के विकास में योगदान :** इन लोक देवों में विश्वास के कारण राजस्थान की अधिकांश ग्रामीण जनता ने बिना धर्मदर्शन पढ़े संस्कृति के मूल मंत्र एकता, ध्यान और नैतिक मूल्यों को समझने में सफलता प्राप्त की।
8. **समाज को एकसूत्रता में बंधे रहने की प्रेरणा :** इन लोक देवताओं में लोगों का अत्यधिक लगाव होने के कारण इनके अनुयायी एक स्थान पर एकत्रित होते हैं जो अपने आपकों एक समाज का अंग मानकर एकता का अनुभव करते हैं।
9. **लोक साहित्य के विकास में योगदान :** अनेक लोकदेवता कवि भी हुए जिन्होंने अपने धर्मोपदेश ग्रंथ लिखे। बाद के साहित्यकारों/अनुयायिओं ने इनकी गाथाओं से भरपूर लोक साहित्य की रचना कर राजस्थान के लोक साहित्य को समृद्ध किया है।
10. **लोक स्थापत्य-कला के विकास में योगदान :** राजस्थान में एक ही ऐसा गांव या शहर नहीं हैं जहाँ इन लोकदेवताओं के छोटे-बड़े एवं विशाल मंदिर देवरे न हों जिसने लोक स्थापत्य के साथ-साथ राजस्थान की स्थापत्य कला को समृद्ध किया है।
11. **लोकगीतों के विकास में योगदान :** राजस्थान के लोक गीतों में राजस्थान के लोक देवताओं के शौर्य एवं चमत्कारिक कार्यो से सम्बन्धित अनेक लोक गीत भरे पड़े हैं जो सर्वत्र ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी गाये जाते हैं।
12. **चित्रकला एवं मूर्तिकला आदि के विकास में योगदान :** इस प्रकार इनकी प्रेरणा से लोगों को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिली। इससे सामाजिक जीवन सुसंगठित हुआ और आचारगत विशिष्टताओं की व्यावहारिकता के पालन हेतु लोग जागरूक रहने लगे। इस प्रकार लोक देवताओं देवियों ने यहां के सामाजिक धार्मिक, नैतिक जीवन को न केवल प्रभावित किया बल्कि एक नवीन दिशा भी दी जो उस समय की आवश्यकताओं के अनुरूप थी।

इस प्रकार लोक देवताओं-देवियों ने यहाँ के धार्मिक व नैतिक जीवन को न केवल प्रभावित किया बल्कि एक नवीन दिशा भी दी जो उस समय की आवश्यकता के अनुरूप थी। कालान्तर मे जिसका पालन सापेक्ष, नैतिक व आध्यात्मिक उद्बोधन हेतु सार्थक माना जाता रहा है। लोक देवता और देवियां अपने विशिष्ट कार्यो या आलोकिक शक्तियो के कारण जन सामान्य मे पूज्यनीय हो गये। लोक देवताओं का पूजन अर्चन देवी-देवताओं की अपेक्षा बहुत ही सहज, सरल व सुविधाजनक है। अतः राजस्थान की ग्रामीण जनता का उनके प्रति अधिक लगाव व झुकाव है। अपनी मनोकामना की पूर्ति पर भौतिक सुख समृद्धि के प्रदाता के रूप में लोक देवताओं की राजस्थान की ग्रामीण जनता पर जो अमिट छाप पड़ी उसका प्रतिबिम्ब वर्तमान एक यहाँ के समाज पर अंकित है।

राजस्थानी स्थापत्य कला की प्रमुख विशेषता

राजस्थानी स्थापत्य कला की प्रमुख विशेषता शिल्प- सौष्ठव, अलंकृत पद्धति एवं विषयों की विविधता है। यह हिन्दू स्थापत्य कला के रूप में जानी जाती है। राजपूतों की वीरता के कारण राजस्थान के स्थापत्य मे शौर्य की भावना स्पष्टतः दिखाई देती है। मध्य काल मे जब तुर्को के निरंतर आक्रमण होने लगे तो राजस्थानी स्थापत्य में शौर्य के साथ-साथ सुरक्षा की भावना का भी समावेश किया गया और विशाल एवं सुदृढ़ दुर्ग बनवाने आरम्भ कर दिये गए। सुरक्षा की दृष्टि से राजपूत शासकों ने अपने निवास भी दुर्ग के भीतर बनवाये तथा पानी का व्यवस्था के लिये जलाशय खुदवाये। राजपूत शासकों की धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा ने दुर्ग के भीतर मंदिरों का निर्माण भी करवाया। 17वीं सदी में मुगलों के सम्पर्क से राजपूत एवं मुस्लिम कला का पारस्परिक मिलन हुआ, जिससे हिन्दू एवं मुस्लिम स्थापत्य शैलियों में समन्वय हुआ। दोनों शैलियों के समन्वय से राजस्थानी स्थापत्य का रूप निखर आया।

प्रमुख विशेषाएँ-

1. **प्राचीन स्थापत्य-** राजस्थान की स्थापत्य कला बहुत प्राचीन है। यहाँ पर काली बंगा में सिन्धु घाटी सभ्यता की स्थापत्य कला के प्रमाण उपलब्ध है। इसी प्रकार आहड़ सभ्यता की स्थापत्य कला उदयपुर के पास तथा मौर्यकाल मे प्रस्फुटित सभ्यता के चिन्ह बैराठ मे मिले है।
2. **सौष्ठव।**
3. **अलंकृत पद्धति।**
4. **विषयों की विविधता-** इससे यहां के शासकों तथा निवासियों की विचारधाराओं, अनुभूतियों और उद्देश्यों की जानकारी प्राप्त होती है।
5. **हिन्दु स्थापत्य कला के रूप मे-** राजस्थान मे सबसे प्रमुख स्थापत्य कला राजपूतों की रही है, जिसके कारण सम्पूर्ण राजस्थान किलों मन्दिरों, परकोटों, राजाप्रासादों, जलाशयों उद्योगों, स्तम्भों तथा समाधियों एवं छतरियों से भर गया है।
6. **शोर्य व सुरक्षाभाव से परिपूर्ण।**
7. **हिन्दु व मुस्लिम स्थापत्य का समन्वय-** मुगलों के सम्पर्क के पूर्व यहाँ हिन्दू स्थापत्य शैली की प्रधानता रही जिसमें स्तम्भों, सीधे पाटों, ऊंचे शिखरों, अलंकृत आकृतियों, कमल और कलश का महत्व था। मुगल काल में राजस्थान की स्थापत्य कला पर मुगलशैली का प्रभाव पड़ा। इस शैली की विशेषताऐं थी- नोकदार

तिपतिया, मेहराव, मेहरावी डाटदार छतें, इमारतों का इठपहला रूप, गुम्बज, मीनारे आदि। दोनों शैलियों के समन्वय से राजस्थानी स्थापत्य का रूप निखर आया। हिन्दू कारीगरों ने मुस्लिम आदेशों के अनुरूप जिन भवनों का निर्माण किया हैं उन्हें सुप्रसिद्ध कला विशेषज्ञ फर्गुसन ने **इण्डों-सारसेनिक शैली** की संज्ञा दी है।

राजस्थान मे जनजागृति के कारण

- **स्वामी दयानंद सरस्वती व उनका प्रभाव-** आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द स्वदेशी व स्वराज का शंख फूंकने वाले पहले समाज सुधारक थे। 1865 ई. में वे करौली, जयपुर व अजमेर आये। उन्होने स्वधर्म, स्वदेशी, स्वभाषा व स्वराज्य का सूत्र दिया। जिसे शासक व जनता ने संहर्ष अनुमोदित किया। 1888-1890 ई. के बीच आर्य समाज की शाखायें राजस्थान मे स्थापित की गई एवं ''वैदिक यंत्रालय'' नामक प्रिटिंग प्रेस अजमेर मे लगाई गई। 1883 ई. मे स्वामी जी ने उदयपुर में ''परोपकारिणी सभा'' की स्थापना की, जो बाद में अजमेर स्थानान्तरित हो गई। इस प्रकार स्वराज्य के लिये प्रेरणा देने का प्रारम्भिक कार्य आर्य समाज ने किया।
- **समाचार पत्रों व साहित्य का योगदान-** राजनीतिक चेतना के प्रसार में समाचार पत्रों का योगदान उल्लेखनीय है। 1885 ई. मे राजपूताना गजट, 1889 ई. में राजस्थान समाचार, प्रारम्भिक समाचार पत्र थे। 1920 ई. में पथिक ने ''राजस्थान केसरी'' का प्रकाशन आरम्भ किया, जिसने अंग्रेजी नीतियों के खिलाफ अपना स्वर ऊँचा किया। 1922 ई. में राजस्थान सेवा संघ ने ''नवीन राजस्थान'' नामक अखबार निकाला, जिसने कृषक आन्दोलनो के पक्ष में आवाज उठाई। 1923 ई. में इसे ''तरूण राजस्थान'' के नाम से प्रकाशित किया जाने लगा। 1932 ई. में प्रभात, 1936 ई. में नवज्योति, 1939 ई. में नवजीवन, 1935 ई. में जयपुर समाचार, 1943 ई. मे लोकवाणी इत्यादि समाचार पत्रों ने राष्ट्रीय स्तर पर राजस्थान की समस्याओं व आंदोलन का खुलासा किया व इनके लिये राष्ट्रीय सहमति बनाई।

  इसी प्रकार ठाकुर केसरी सिह बारहठ, जयनारायण व्यास, पं. हीरालाल शास्त्री की कविताओं मे देश प्रेम अपनी चरम सीमा पर परिलक्षित होता है। अर्जुनलाल सेठी की कृतियों ने वैचारिक क्रांति उत्पन्न की। इस संदर्भ मे महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण द्वारा उचित ''वीर सतसई'' का उद्धरण विस्मृत नहीं किया जा सकता है जिसमें वीर रस व स्वदेश प्रेम का अनूठा सम्मिश्रण है।
- **मध्यम वर्ग की भूमिका-** यद्यपि राजस्थान का साधारण मनुष्य भी विद्रोह की सामर्थ्य रखता था, फिर भी एक योग्य नेतृत्व उसे मध्यम वर्ग से ही मिला, जो आधुनिक शिक्षा प्राप्त था। यह नेतृत्व शिक्षक, वकील व पत्रकार वर्ग से आया। जयनारायण व्यास, मास्टर भोलानाथ, मघाराम वैद्य, अर्जुनलाल सेठी, विजय सिंह पथिक आदि इसी माध्यम वर्ग के प्रतिनिधि थे।
- **प्रथम विश्वयुद्ध का प्रभाव-** राजस्थान के लगभग सभी राज्यों की सेनाओं ने प्रथम विश्व युद्ध में भाग लिया। जो सैनिक लौटकर आये उन्होने अपने अनुभव बाँटे-नई वैचारिक क्राांति से राजस्थान के लोगो को परिचित कराया। दूसरी और युद्ध का समस्त भार भारतीय जनता द्वारा अंग्रेज सत्ता को कर चुका कर उठाना पड़ा और परिणामस्वरूप असंतोष का भाव अधिक पनपने लगा।
- **बाह्य वातावरण का प्रभाव-** राजस्थान शेष भारत में चल रही राजनीतिक गतिविधियों से अनभिज्ञ नही था। राष्ट्रीय स्तर के नेताओं व उनके कार्यक्रमों का प्रभाव यहाँ भी पड़ा। जहाँ एक ओर हरि भाऊ उपाध्याय व जमनालाल बजाज जैसे लोग गाँधीवादी नीतियों का अनुसरण कर रहे थे वहीं रास बिहारी बोस के विचारों से प्रेरित अर्जुन लाल सेठी, गोपालसिंह खरवा व बाहरठ परिवार भी स्वतंत्रता की अलख जगा रहे थे।

अतिलघुत्तरीय प्रश्न

हुरणा सम्मेलन - 1734 में राजपूतों द्वारा मराठों के विरूद्ध हुरड़ा (भीलवाड़ा) नामक स्थान पर सम्मेलन आयोजित किया गया। जिसमें राजपूतों ने मराठों के खिलाफ संघ निर्माण (जगतसिंह द्वितीय की अध्यक्षता में) का प्रयास किया जो निजी स्वार्थों के कारण असफल रहा।

दिवेर का युद्ध -1582 में महाराणा प्रताप, राजकुमार अमर सिंह व मुगल सेना (सुल्तान खां) के बीच लड़ा गया, जिसमें महाराणा प्रताप की विजय हुई टॉड ने इस युद्ध को **मेवाड़ का मैराथन** कहा। इसी युद्ध की राणा द्वारा हाथी के मस्तक पर प्रहार की घटना इतिहास में प्रसिद्ध है तथा इस युद्ध के बाद महाराणा प्रताप की मृत्यु हो गयी।

माण्डणा

- राजस्थान की प्रसिद्ध लोक चित्रकला
- महिलाओं द्वारा घरों में खडिया, गेरू आदि रंगों से विविध ज्यामितीय अलंकरण बनाये जाते हैं।
- यह राजस्थान की पहचान बनकर उभरा है।

स्व. भूरसिंह शेखावत

- शेखावाटी के भूरसिंह शेखावत मूलत: कला अध्यापक, नव यथार्थवादी व नव प्रभाववादी कला के संयुक्त चित्रकार थे।
- उनके वाटर कलर, टेम्परा, वाश एवं भित्तिचित्रों में मूलर का चित्रांकन एवं जनजीवन की बहुविधि झांकियां दृष्टिगत होती है।

नाथद्वारा शैली -मेवाड में श्रीनाथद्वारा में श्रीनाथजी के प्राकट्य की छवियों में स्थानीय आधार के साथ राजस्थान तथा अन्य उत्तर भारत के भागों की शैलियों के सामंजस्य से विकसित चित्रकला शैली नाथद्वारा शैली कहलाती है।

थेवाकला

- प्रतापगढ़ में रंगीन बेल्जियम कांच व स्वर्णाभूषणों पर सूक्ष्म हरे रंग का चित्रांकन (मीनाकारी) थेवा कला कहलाती है।
- सोनी परिवार इस कार्य के लिए जगत प्रसिद्ध है।

सुनहरी कोठी

- इब्राहीम खां ने टोंक में सुनहरी कोठी का निर्माण करवाया
- जो अपनी पच्चीकारी एवं मीनाकारी के लिए प्रसिद्ध है।

गलियाकोट

- परमारों की राजधानी
- डूंगरपुर में माही नदी के निकट गलियाकोट में दाउदी उर्स (फखरूउद्दीन पीर की मजार) तथा आदिवासियों का प्रमुख स्थान हैं यहाँ अनेक मेले लगते हैं।
- इस प्रकार यह एक साम्प्रदायिक सौहार्द का व सांस्कृतिक स्थल है।

जोहौर व्रत-युद्ध में जीत की आशा समाप्त होने पर राजपूत वीरांगनाओं द्वारा दुर्ग की सम्पत्ति सहित अपने सतीत्व की रक्षा के लिए अग्नि में भस्म होकर **'जौहर व्रत'** का पालन किया जाता था।

बरी पाड़ता

- राजस्थान में बरी पाड़ला एक विवाह संबंधी रस्म हैं
- जिसमें विवाह के अवसर पर वधु के लिए वर पक्ष द्वारा वस्त्राभूषण आदि खरीदने की रस्म की जाती हैं।

जंतर

- राजस्थान का प्रसिद्ध तत् लोकवाद्य
- वीणा के समान 2 तुम्बों में 5-6 तार कसकर मगरमच्छ की खाल से बनाया जाता है-जिसे गुर्जरों के भोपे देवनारायण जी की फड़ वाचन में प्रयुक्त करते हैं।

अलगोजा

- दो बांस की नलियों से निर्मित राजस्थान का प्रसिद्ध सुषिर लोकवाद्य जो नकसांसी ने बजाया जाता हैं।
- अलवर, सवाईमोधापुर क्षेत्रों एवं भील, कालबोलियों आदि में बहुत लोकप्रिय हैं।

डिंगल

पश्चिमी राजस्थानी भाषा का वह साहित्यिक रूप जो गुजराती से साम्यता रखता हैं एवं जिसे चारणों द्वारा साहित्यिक लेखन में काम लिया गया, डिंगल के रूप में जाना जाता हैं। इसे मरू भाषा भी कहते हैं।

पबागड़ी

डूंगरपुर व बांसवाड़ा का सम्मिलित क्षेत्र 'बागड़' एवं यहाँ प्रयुक्त बोली बागड़ी हैं जो मारवाड़ी की उप बोली है इस पर गुजराती का अधिक प्रभाव है। ग्रियर्सन इसे 'भीली' कहते है।

मेवाती

अलवर, भरतपुर व गुडगांव क्षेत्र का मेवात एवं यहाँ प्रयुक्त बोली को मेवाती कहते हैं जो पूर्वी राजस्थान की प्रधान बोली है। राठी, मेहण, काठोर आदि इसकी उप बोलियाँ हैं।

राँगड़ी

मालवा क्षेत्र में राजपूतों में प्रचलित मारवाड़ी और मेवाती के सम्मिश्रण से उत्पन्न बोली के विशिष्ट रूप का रांगडी कहा जाता हैं। यह थोड़ी कर्कश है।

उद्योतन सूरी -8वीं सदी के भीनमाल में प्रसिद्ध जैन कवि उद्योतन सूरी ने प्राकृत में कुवलयमाला की रचना की जिसमें तत्कालीन राजस्थान की सांस्कृतिक दशा का वर्णन किया गया है।

कान्हड़दे प्रबन्ध -15वीं सदी के लेखक पद्मनाथ द्वारा राजस्थानी में लिखा ग्रंथ जिसमें जालौर के कान्हड़दे चौहान व अलाउद्दीन का संघर्ष, समकालीन, भूगोल व सामाजिक परम्पराओं की जानकारी मिलती हैं। इसमें रास, चौपाई व वीरोल्लास युक्त काव्य का सम्मिश्रण है।

कवि माद्य -8वीं सदी के भीनमाल के प्रसिद्ध कवि माद्य ने शिशुपाल वध की रचना की। जिसमें कालिदास की उपमा, भारवी का विचार गांभीर्य एवं दण्डी की लेखन शैली की नियम निष्ठा का सुन्दर संयोजन किया है।

कन्हैयालाल सेठिया -20वीं सदी के राजस्थानी एवं हिन्दी के आधुनिक कवि कन्हैयालाल सेठिया ने राजस्थानी में पातल-पीथल वीर रस की अत्यन्त प्रसिद्ध व लोकप्रिय कविता की रचना की। धरती धोरां री, अधोरी काल आदि अन्य रचनायें है।

शाक्य सम्प्रदाय - शक्ति (देवी) की पूजा में विश्वास करने वाले शाक्त सम्प्रदाय को यौद्धा जाति ने अपनी आराध्य मानकर कुलदेवी का दर्जा दिया। करणीमाता, सुगालीमाता आदि विविध राजवंशों की कुलदेवियां एवं लोकदेवियों के रूप में पूज्य रही।

पाबूजी -मारवाड़ के पंचपीरों में प्रमुख जोधपुर के पाबूजी राठौड़ ने गौरक्षार्थ प्राण न्यौछावर कर देवत्व प्राप्त किया। इनकी प्लेग रक्षक एवं ऊंटों के रक्षक देवता के रूप में विशेष मान्यता है।

गोगाजी -मारवाड़ के पंचपीरों में प्रमुख चूरू के गोगाजी चौहान ने गौरक्षार्थ एवं देश रक्षार्थ प्राण न्यौछावर कर देवत्व प्राप्त किया। इनकी सांपों के देवता एंव जाहरपीर के रूप में विशेष मान्यता है।

कल्लाजी राठौड़ -मेवाड़ के प्रसिद्ध लोकदेवता एवं मीराबाई के निकट सम्बन्धी कल्लाजी राठौड़ की मान्यता चार हाथों वाले देवता एवं नागराज के अवतार के रूप में है ये अकबर के विरूद्ध युद्ध करते हुए शहीद हुए।

सुगाली माता -आउवा के ठाकुरों की कुलदेवी सुगाली माता मंदिर (आउवा) 1857 की क्रान्ति का मुख्य केन्द्र रहा। बाद में अंग्रेजों ने सुगाली माता के भक्त कुशाल सिंह को गिरफ्तार कर माता के मंदिर को तहस-नहस किया।

पथवारी माता -पथवारी देवी गाँव के बाहर स्थापित की जाती है। इनके चित्रों में नीचे काला-गौरा भैंरू तथा ऊपर कावड़िया वीर व गंगोज का कलश बनाया जाता है।

अपूर्वी चंदेला -राजस्थान की शूटर अपूर्वी चंदेला ने स्वीड्न ग्रांपी (10मी. एयर राईफल स्पर्द्धा) 2016 में स्वर्ण पदक तथा 20वें राष्ट्रमंडल खेल स्पर्द्धा ग्लासगो (स्कॉटलैण्ड) अगस्त, 2014 में स्वर्ण पदक तथा हाल ही में (2016) अर्जुन अवार्ड प्राप्त किया।

मारवाड़ के पंचपीर -पाबूजी (कोलू-जोधपुर), रामदेवजी (उडूकासमेर-बाडमेर), हडबूजी (भूडेल-नागौर), मेहाजी, मांगलिया बापिणी ये पांच पीर हुए जो लोकदेवता के रूप में पूजनीय है। इन पंचपीरो के बारे मे एक प्रसिद्ध दोहा इस प्रकार है-

- ''पाबू, हडबू, रामदे, मांगलिया, मेहा।
- पांचो पीर पधारज्यों गोगाजी जेहा''।।

माधरी नृत्य -डूंगरपुर-बांसवाड़ा में भील जनजाति की महिलाओं द्वारा किया जाने वाला नृत्य, जिसका अंत दुखांत होता है।

वृहद राजस्थान में सम्मिलित रियासतें -वृहद राजस्थान एकीकरण का चौथा चरण है इसमें संयुक्त राजस्थान (तृतीय चरण) के साथ जोधपुर, जयपुर, बीकानेर व जैसलमेर की रियासतें व लावा ठिकाना शामिल था।

लसोड़िया आन्दोलन -संत मावजी ने मेवाड़ व बांगड़ क्षेत्र के भीलों में जागृति हेतु यह आंदोलन चलाया था। जिससे यह क्षेत्र बाद में राष्ट्रीय आंदोलन में महत्वपूर्ण क्षेना बना।

रसिक प्रिया

- गीत गोविन्द की टीका
- कुम्भा द्वारा रचित
- 'रसिक प्रिया' में गोविन्द के प्रत्येक पद की गाई जाने वाली राग-रागनियों को कुम्भा द्वारा रचित किया गया है।

विजयसिंह पथिक

- बिजौलिया किसान आंदोलन के संचालक
- ''राजस्थान केसरी'' के सम्पादक व ''राजस्थान सेवा संघ'' के संस्थापक व ''देशी राज्य लोक परिषद्'' के उपाध्यक्ष भी रहे।

कुहासा/कोहरा-यह संघनन का लटकता रूप हैं जिसके लिए धूलकण उत्तरदायी हैं, कम घना कोहरा कुहासा कहलाता हैं।

विश्वमोहन भट्ट

- जयपुर के वीणा वादक,
- मध्य प्रदेश सरकार द्वारा सम्मानित, राष्ट्रीय तानसेन अलंकरण से सम्मानित ।

रामदेवरा

- पोकरण के निकट रूबिया में बाबा रामदेव का तीर्थस्थल
- राष्ट्रीय एकता एवं साम्प्रदायिक सद्भाव का मुख्य केन्द्र।

भैंसरोडगढ दुर्ग

- चित्तोड़ में चम्बल और बामनी नदियों के संगम पर दुर्ग
- राजस्थान का वेल्लोर कहलाता हैं।

त्रिपुरसुन्दरी मंदिर

- तलवाडा (बाँसवाड़ा) में,
- प्राचीन काल के तीन पुरों- शक्तिपुर, शिवपुर, विष्णुपुर में स्थित होने के कारण सह-नामकरण

एकी आंदोलन-मोतीमहल तेजावत द्वारा भीलों को अत्याचारों व शोषण से मुक्त कराने हेतु चलाया गया।

लीलण- जैसलमेर में पायी जाने वाली पौष्टिक घास का प्रकार

मेनाल- चित्तौड़ में, नीलकंठेश्वर महादेव के लिए प्रसिद्ध यहां बारहमासी झरना बहता हैं, त्रिवेणी संगम भी है।

काली बाई- डूंगरपुर के 13 वर्षीय बालिका जिसे अपने अध्यापक को मुक्त करवाने के कारण रियासती सैनिकों ने गोली मारकर हत्या कर दी।

पृथ्वीराज रासौ

- चन्दर बरदाई द्वारा रचित
- पिंगल में रचित वीर रस महाकाव्य
- पृथ्वीराज के जीव चरित्र व युद्धों का वर्णन

मोरचंग-लौहे को छोटा सा वाद्य, रेगिस्तान में लगा गायकों में प्रसिद्ध होठों के बीच रखकर बजाते

मेवाती-पूर्वोत्तर राजस्थान का महाभारतकालीन मत्स्य जनपद अलवर, भरतपुर, धौलपुर, एवं करौली के पूर्वी क्षेत्र की बोली जिसकी राठी, महेठा व कठेर उपबोलियाँ है।

ख्यात-राजस्थान में यहाँ के देशी राज्यों के राजाओं ने अपनी मान-मर्यादा का चित्रण इतिहास लिखवाकर किया, इस प्रकार लिखवायें गये इतिहास 'ख्यात' कहलाते है।

बनी-ठनी-किशनगढ़ के राजा सावंत सिंह (नागरीदास) ने अपने प्रेमिका व दरबार गायिका-नर्तकी बनी-ठणी को अपने दरबारी चित्रकार निहालचन्द्र से चित्रित करवाएँ।

अग्नि नृत्य-बीकानेर जिले के कतरियासर ग्राम से उद्‌गमित अग्नि नृत्य को जसनाथी संप्रदाय के मतानुयायी जाट सिद्‌ध नर्तक रात्रि जागरणों के समय करते हैं।

बैराठ-सुगाली देवी के भक्त आऊवा के ठाकुर कुशालसिंह चांपावत क्रान्तिकारियों के साथ अंग्रेजी सत्ता के विरूद्व खड़े हुए।

नृत्य गणेश-राजस्थान में नीलकण्ठ, अलवर की नृत्य गणेश की मूर्ति मूर्तिकला का अदभूत नमूना है।

किराड़िया-राजस्थान में किसानों द्वारा खेतों में बनाये जाने वाले परम्परागत झोपड़ीनुमा अवशीतन भण्डारगृह किराड़िया कहलाते है।

धिम्मी- जजिया कर चुकाने वाले गैर मुस्लिम लोग जो राज्य के संरक्षण के हकदार होते थे, धिम्मी कहलाते थे।

अंजना देवी चौधरी ?

स्वतंत्रता सेनानी। 1921-24 में मेवाड़, बूंदी राज्यों की स्त्रियों में राष्ट्रीयता, समाज सुधार की भावना को बढ़ावा दिया। बिजौलिया आन्दोलन में भाग लिया। हरिजन सेवा (नारेली आश्रम) कार्यो में भाग लिया।

दादू की प्रमुख शिक्षाओं को संक्षेप में बताइए।

दादू की शिक्षाएं -

1. ईश्वर सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी और निराकार है।
2. गुरू की सहायता से ही भवसागार पार किया जा सकता है।
3. मूर्ति-पूजा, जाति-भेद, छुआ-छूत का विरोध ।

मतीरे की राड़ ।

- **1644 ई.** में अमर सिंह (नागौर) व कर्णसिंह (बीकानेर) के मध्य युद्ध
- **कारण- बीकानेर रियासत के गाँव की मतीरे की बेल नागौर के गाँव** में चली गई
- कर्ण सिंह विजयी

नीमूचणा हत्याकाण्ड ।

- बढ़ी हुई लगान दरों कें विरोध में 14 मई 1925 को अलवर के नीमूचणा नामक स्थान पर किसानों की सभा पर अंधाधुंध फायरिगं से सैकड़ों किसान मारे गए।
- गांधी जी ने इसे ''दूसरा जलियावाला बाग हत्याकाण्ड'' तथा ''दोहरी डायरशाही'' कहा।

अलखिया सम्प्रदाय ।

- चुरू के स्वामी लाल गिरि जी द्वारा 10वीं सदी में प्रचारित
- निर्गुण भक्ति सम्प्रदाय की एक शाखा
- प्रमुख पीठ बीकानेर में स्थापित
- सम्प्रदाय के अनुयायी अलख निरंजन का उद्‌घोष करते है।

राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट्‌स ।

- ढूंढ़ाड क्षेत्र की कलाओ एवं जयपुर चित्रशैली के संरक्षण एवं विकास हेतु
- 1857 ई. में जयपुर के तत्कालीन शासक महाराजा रामसिंह द्वारा (मदरसा-ए-हुनरी) नामक कला से यह संस्थान की स्थापना करवाई गई।
- वर्तमान में यह संस्थान '' राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट्‌स'' कहलाती है।

स्वतंत्रता के समय राजस्थान कें ठिकाने (चीफशिप) ?

स्वतंत्रता के समय राजस्थान में 3 ठिकानें-

(i) लावा (टोंक)
(ii) कुशलगढ़ (बांसवाड़ा)
(iii) नीमराणा (अलवर)

लघुउत्तरीय प्रश्न

राजस्थान में प्रमुख चित्रकलाऐं और उनकी विशेषता

उत्तर-राजस्थान में चित्रकला का विकास कुछ स्थाई विशेषताओं के साथ हुआ और राजपूताना राज्यों के नामों पर इन शैलियों का नामकरण हुआ। विभिन्न चित्रकला शैलियों मे सबसे पुरानी **मेवाड़ शैली** है जिसमें लाल, पीले, रंगों का प्रयोग, कदम्ब वृक्ष, हाथी चकोर का चित्रण प्रमुख है श्रीनाथ जी की लीलाओं के अंकन हेतु **नाथद्वारा शैली**, जो पिछवाई कला के नाम से भी जानी जाती है, भी प्रमुख है। इसके अतिरिक्त युद्ध, शिकार, भक्तिरस व श्रृंगार रस से ओतप्रोत **मारवाड़ शैली**, बणी-ठणी जैसी सुन्दरता का प्रदर्शन करने वाली **किशनगढ़ शैली**। पक्षी, के चित्रण हेतु प्रसिद्ध **बूंदी शैली**, मुगलों के सर्वाधिक प्रभाव वाली **जयपुर शैली** राजस्थान की चित्रकला की प्रमुख शैलियाँ रही है साथ ही **अलवर**, **कोटा शैलियों** का चित्रकला मे अभूतपूर्व योगदान है।

राजस्थानी चित्रशैली की विशेषताओ के बारे मे लारेन्स विनियन का कहना है कि, **''राजस्थानी चित्रशैली विशुद्ध रूप से भारतीय है''**। राजस्थानी चित्रकला की प्रमुख विशेषताओं में-

- प्राचीनता।
- भारतीयता।
- कलात्मकता।
- रंग वैशिष्टय।
- लोक जीवन का सानिध्य।
- भाव प्रवरता का प्राचुर्य।
- विषय वस्तु का वैविध्य।
- देश काल की अनुरूपता।
- प्राकृतिक परिवेश की अनुरूपता।
- नारी सौंदर्य है।

राजस्थान में मूर्तिकला Sculpture in Rajasthan

उत्तर-''शिल्प मे जो भावना और कल्पना है वही मूर्तिकला है।'' कालीबंगा एवं आहड़ के उत्खनन से प्राप्त धातु एवं मिट्‌टी की मूर्ति एवं खिलौने राजस्थान मे मूर्तिकला के प्राचीन साक्ष्य है। गुप्तोत्तर एवं मध्यकाल तक राजस्थान मूर्तिकला बहुत परिपक्व हो गई थी। धार्मिक समभाव राजस्थान की मध्यकालीन मूर्तिकला की प्रमुख विशेषता रही है। राजस्थान में मूर्तियों के निर्माण के लिए जालौर, अलवर, चित्तौडगढ़ प्रसिद्ध है। मूर्तिकला में सबसे महत्वपूर्ण है टेरीकोटा जिसमें मिट्‌टी को पकाकर मूर्ति बनायी जाती है, नाथद्वारा का मलेला गांव इस हेतु प्रसिद्ध है।

बस्सी (चित्तौडगढ़) में लकड़ी की मूर्तिया और खिलौने बनाए जाते है। जयपुर में हाथी दांत और चन्दन से मूर्तिया बनायी जाती है। राजस्थान में स्थापित देवरा भी सुन्दर मूर्तिकला का उदाहरण है। 'पाना' मूर्ति कला का एक अन्य उदाहरण है जिसमें कागज को गलाकर देवी देवताओं की मूर्तीयों का निर्माण होता है।

राजस्थान में 1857 की क्रांति

उत्तर-1857 के आंदोलन में राजस्थान स्थित कोटा कन्टिजेन्ट, जोधपुर लीजन, भीलकोर, नसीराबाद, मेर रेजीमेट (ब्यावर) जैसी- स्थानीय सैनिक छावनियों ने भाग लिया, जबकि यहां की रियासतों ने अंग्रेजों का साथ दिया। सबसे पहले नसीराबाद में विद्रोह हुआ, नीमच छावनी में हरी सिंह के नेतृत्व में विद्रोह हुआ। ऐरनपुरा में सैनिकों ने 'चलो दिल्ली मारों फिरंगी' का नारा दिया वही आऊवा के ठाकुर खुशाल सिंह ने सम्पूर्ण प्रदेश में विद्रोह का नेतृत्व किया। उन्होंने बिठौरा के युद्ध में अंग्रेजों को हराया। **सार्जेन्ट मोकमेसन** को मारकर किले पर लटका दिया तथापि अंग्रेजों ने अपनी रणनीति शस्त्रबल तथा स्थानीय राजाओं की मदद से आंदोलन को दबा दिया।

मेवाड़ प्रजामण्डल Mewar Prajamandal

उत्तर-मेवाड़ प्रजामंडल की स्थापना माणिक्य लाल वर्मा द्वारा 24 अप्रैल 1936 को की गयी जिसमें हीरालाल कोठारी, रमेश चन्द्र व्यास, भवानी शंकर वैद्य आदि नेता थे। प्रजामण्डल का उद्‌देश्य मेवाड़ में जनता के अधिकारों तथा आर्थिक सामाजिक समस्याओं हेतु लड़ायी लड़नी थी। 11 मई 1938 को उदयपुर राज्य द्वारा इस संस्था को गैरकानूनी घोषित कर दिया गया तथा नेताओं को निष्कासित कर दिया। माणिक्यलाल वर्मा ने अजमेर से सत्याग्रह की घोषणा की। 2 फरवरी 1939 को माणिक्यलाल वर्मा को गिरफ्तार कर किया गया तथा एक वर्ष की

कठोर सजा दी गयी। मेवाड़ के नए प्रधानमंत्री टी राघवाचारी ने प्रजामंडल से प्रतिबंध हटा किया और माणिक्यलाल वर्मा को रिहा कर दिया। पुन: इस प्रजामंडल ने भारत छोड़ो आंदोलन में बढ़ चढ़कर भाग लिया।

बेंगू किसान आंदोलन को स्पष्ट करें

बेंगू किसान आंदोलन 1921 में शुरू हुआ जब बेगू के किसान मेनाल नामक स्थान पर एकत्रित हुए और यह निश्चय किया कि बेंगू में भी लाल बाग, बेगार और ऊंचे लगान को ठिकाने की मनमर्जी के अनुसार न देकर जायज व न्यायपूर्ण। बनवाने के लिए संघर्ष किया जायेगा नेतृत्वकर्ता रामनारायण चौधरी थे, इन्हीं के फैसलें अनुसार फसल का कंता नहीं कराया, सरकार का बहिष्कार किया इससे बने दबाव से राज्य में बंदोबस्त व्यवस्था लागू एवं लगान पद निर्धारित किया।

जेन्टलमैन एग्रीमेन्ट-

जयपुर में जयपुर प्रजामण्डल की स्थापना के बाद इसके अध्यक्ष हीरालाल शास्त्री ने 16 सितम्बर, 1942को जयपुर राज्य के प्रजाधानमंत्री सर मिर्जा इस्माइली को पत्र लिखकर कुछ शर्ते रखी जिनका पालन न करने पर आन्दोलन की चेतावनी दी। जयपुर सरकार ने समझौता किया और आश्वासन दिया कि अंग्रेजों को युद्व में मदद की जाएगी। और राज्य में उत्तरदायी शासन की स्थापना की कार्यवाही शीघ्र शुरू की जायेगी। यह समझौता ' जेन्टिलमेन एण्ग्रीमेण्ट' कहा गया।

राजस्थान की राजपूत स्थापत्य कला संक्षेप में परिचय दें।

उत्तर: राजस्थान की विशेष भौगौलिक स्थिति ने यहॉ के स्थापत्य को प्रभावित किया है। नगर, महल, परकोटे, किले या जलाशयों के निर्माण में उपयोगिता के साथ स ृदृढ़ता का तत्व प्रमुखता से दृष्टिगोचर होता है। मध्यकाल में किलो के निर्माण में ऊॅची- ऊॅची पहाड़ियों जो ऊपर से चौड़ी हों और जिनमें खेती तथा सिंचाई के साधन हों किले बनाने के लिए उपयोग में लायी जाने लगी। पुराने किले के भीतर ऊॅचे से ऊॅचे भाग का प्रयोग राजप्रसाद के लिये तथ नीचे भाग को जलाशयों के लिए एवं समतल भाग को कृषि के लिए रखा गया। बची हुई भूमि का उपयोग मंदिरों तथा मकानों के निर्माण में किया गया। साथ ही राजस्थानी भवनों में झरोखों, छत्रियों, जालियों व जल ग्रहण के लिए जोहड़ों व बावड़ियों का विशेष स्थान रहा है। राजपूत कला पर मुगल शैली का पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है। इसी प्रकार राजस्थानी हवेलियां भी अपनी विशेष स्थापत्क कला के लिए प्रसिद्व है।

चित्रकला की बीकानेर शैली।

मारवाड़ शैली से संबंधित बीकानेर शैली का सर्वाधिक विकास अनूप सिंह के शासन काल में हुआ। इस शैली पर पंजाबी शैली का भी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, क्योंकि बीकानेर क्षेत्र उत्तर में पंजाब के समीप ही स्थित है। यहॉं के शासकों की नियुक्ति दक्षिण में होने के कारण इस शैली पर दक्किनी शैली का भी प्रभाव पड़ा है। इस शैली की सबसे प्रमुख विशेषता है मुस्लिम कलाकारों द्वारा हिन्दू धर्म से सम्बन्धित एवं पौराणिक विषयों पर चित्रांकन करना। रामलाल, अलीरजा, हसनरजा आदि इस शैली के प्रमुख कलाकार थे।

राजस्थान के इतिहास में सामन्त प्रथा ?

- राजस्थान में सामन्तवाद की स्थापना आंशिक रूप से 7वीं-8वीं शताब्दी में राजपूत राज्यों की स्थापना के साथ हो चुकी थी, परन्तु 15वीं सदी के बाद सामन्त प्रथा ने राजनीतिक और सामाजिक रूप से विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया था।
- सामन्त सामान्यत: राजा के वंश से सम्बधित भाई-बन्धु थे, और वे सभी अपने को राज्य का समान भागीदारी समझते थे। उनकी दृष्टि में राजा आपने कुल का प्रधान था। वे स्वयं को राजा के अधीन नहीं बल्कि उसका सहयोगी समझते थे।
- राजा इन सामन्तों के सहयोग से ही राज्य की स्थापना व विस्तार करने में सक्षम रहे थे। राजा अपने सामन्तों को भाईजी और काकाजी आदि आदरसूचक शब्दों से सम्बोधित करते थे। इसी प्रकार सामन्त राजा को 'बाप जी' कहते थे।

1857 की क्रांति में राजस्थानी साहित्यकारों की भूमिका की विवेचना कीजिए।

1857 की क्रांति के समय यहॉं के कवियों एवं साहित्यकारों ने समाज के सभी वर्गो में अपनी कहानियों एवं गीतों के माध्यम से जनजागृति लाकर क्रांति का नूतन-संचार किया। प्रसिद्ध कवि बांकीदास ने कविताओं का धिक्कारा एवं कोसा साथ ही जन सामान्य से फिरंगियों के विरूद्ध शस्त्र उठाने का आह्वान किया। महाकवि सूर्यमल मिश्रण ने अपने ग्रंथ (वीर सतसई) द्वारा जागीरदारों एवं जनसामान्य में जोश भर दिया। दलजी कवि ने अपनी कविताओं कें माध्यम से शासकों सामान्तों व जनता में ब्रिटिश विरोधी भावना का संचार किया। चारण, भाटों ने स्थानीय वीर नायकों जैसे कुशालसिंह चांपावत, डूंगजी-जबारजी, डूंगसिंह लोटिया जाट आदि की प्रशंसा में वीररस के गीतों की रचना कर व जगह-जगह इन्हें फैलाकर जनसामन्य को क्रांति के लिए प्रेरित किया।

स्थापत्य कला की उन्नति में सवाई जयसिंह का योगदान ।

सवाई जयसिंह ने अनेक दुर्गो, राजमहलों, भवनो, उद्यानो आदि का निर्माण करवाया, जिनमें प्रमुख है -

- आमेर राजमहल
- जयपुर नगर की नीव (1777 ई.)
- नाहरगढ़ दुर्ग का निर्माण शुरू
- जयनिवास महल का निर्माण
- चन्द्रमहल (सिटी पैलेस)
- जल महल

इस प्रकार सवाई जयंसिह ने स्थापत्य कला को समृद्धता प्रदान की जिसके कारण आज जयपुर पर्यटन का प्रमुख केन्द्र बना हुआ है।

वाल्टर कृत हितकारिणी सभा ।

- 1889 में वाल्टर कृत हितकारिणी सभा का गठन किया गया।
- राजस्थान के ए.जी.जी को इसका अध्यक्ष बनाया गया।
- इसमें प्रत्येक राज्य में राजपूत जाति के 5-5 सदस्य नियुक्त किए गए।
- इसके सुधार थे-
  (1) इस सभा ने अपने नियमों में बहुविवाह को समाप्त कर दिया।
  (2) इसने टीका व रीत की प्रथा को भी समाप्त कर दिया।
  (3) इसने विवाह की कम से कम आयु लड़की के लिए 14 वर्ष तथा लड़के के लिए 18 वर्ष निर्धारित की।

बिजौलिया किसान आंदोलन ।

बिजौलिया (वर्तमान भीलवाड़ा जिले में), जहॉं पर राजस्थान का प्रथम संगठित किसान आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, जिसका कारण जागीरदार द्वारा अधिक लाग-बाग वसूलना था। 1916 ई. में साधु सीताराम जी के आग्रह पर 'विजय सिंह पथिक' आन्दोलन से जुडे तथा आन्दोलन का नेतृत्व किया।

मौर्य और राजस्थान ।

- अशोक का बैराठ का शिलालेख तथा उसके उत्तराधिकारी कुणाल के पुत्र सम्प्रति द्वारा बनाए गए मंदिर मौर्यो के राजस्थान में प्रभाव की पुष्टि करते है।
- कुमार पाल प्रबंध के अनुसार चितौड़ का किला व चित्रांग तालाब मौर्य राजा चित्रांग द्वारा बनवाया हुआ है।
- कोटा के निकट कणसवा के शिवालय से 738ई. का शिलालेख मिला है, जिसमें मौर्यवंशी राजा धवल का नाम है।

राजस्थान कें एकीकरण के विभिन्न चरणों का वर्णन करों ।

देश की आजादी क साथ समय राजस्थान में 19 रियासते 3 ठिकाने एवं एक अजमेर-मेरवाड का केन्द्रशासित प्रदेश था। एकीकृत राजस्थान के निर्माण में जहॉं स्थानीय शासको एवं राजनेताओ का महत्वपूर्ण योगदान रहा वहीं भारत सरकार के गृहमंत्री सरदार पटेल तथा सचिव मेनन का भी सक्रिय सहयोग रहा और दोनों के सम्मिलित प्रयासो के

परिणामस्वरूप ही मौजूदा राजस्थान अस्तित्व में आया। इसके एकीकरण के चरण निम्न हैं-

(1) प्रथम चरण - मत्स्य संघ
(2) द्वितीय चरण - राजस्थान संघ
(3) तृतीय चरण - संयुक्त राजस्थान
(4) चतुर्थ चरण - वृहत राजस्थान
(5) पंचम चरण - संयुक्त वृहद् राजस्थान
(6) षष्टम चरण - राजस्थान- 26 जनवरी 1950
(7) सप्तम चरण - राजस्थान - 1 नंवम्बर 1956

इस प्रकार सरदार पटेल की चतुराई, व कुशल नीति से राजस्थानी शासकों की अनिच्छाओ पर जनमत के प्रभावशाली दबाव से तथा राजस्थान के जननेताओं के अथक प्रयासो से राजस्थानी लोगों का स्वप्न साकार हुआ।

राजस्थान कें प्रमुख ख्याल, प्रचलन क्षेत्र व उनकी विशेषताओं का वर्णन करो ।

यह लोक नाट्य की वह विधा है जिसमे किसी धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक या पौराणिक आख्यान को पंद्यबद्ध रचनाओ के रूप में अलग-अलग पात्रो द्वारा रंगमचन किया जाता है।

राजस्थान के प्रमुख ख्याल निम्न है -

क्र. स.	नाम	क्षेत्र	विशेषताएँ
1.	कुचामनी ख्याल	नागौर क्षेत्र	हास्य विनोद व लोकगीत की प्रधानता
2.	चिड़ावा ख्याल	शेखावाटी क्षेत्र	गायन, वादन व नर्तक तीनों का संम्प्रेषण
3.	तुर्रा-कलंगी ख्याल	निम्बाहेड़ा, घोसुण्डा	गैर व्यवसायिक प्रवृति, शास्त्रा
4.	अली बख्श ख्याल	अलवर	अलाप की विशिष्टता, अली बख्श को अलवर का **'रसखान'** कहा जाता हैं
5.	कन्हैया ख्याल	करौली, सवाई माधोपुर	प्रस्तुतीकरण में मेडिया तथा मीट महत्वपूर्ण होता है
6.	हैला ख्याल	लालसोट(दौसा), करौली	लम्बी टेर देना इसकी विशेषता है जिसे **'हेला'** देना कहते है

इस प्रकार राजस्थान लोक ख्यालों में काफी समृद्ध है और साथ ही ये ख्याल हमारी सास्कृतिक परम्पराओं व सामाजिक जुड़ाव तथा संस्कारो को अभिव्यक्ति प्रदान करते है।

रासधारी ख्याल

उत्तर : 'रासधारी' का सामान्य अर्थ हैं, वह व्यक्ति जो रासलीला करता हैं, जो भगवान कृष्ण के जीवन-चरित्र पर आधारित होती है। सबसे पहला रासधारी नाटक लगभग 100 वर्ष पहले मेवाड़ में मोतीलाल जाट द्वारा लिखा गया। रासधारियों की लोक नृत्य नाट्य शैली ख्याल एवं अन्य लोक नाट्यों से सर्वथा भिन्न है। यह विशिष्ट शैली उदयपुर तथा आस-पड़ौस के क्षेत्रों किसी अखाड़े या मंच के निर्माण की जरूरत नहीं होती। रास में मुख्य कथाएं, रामलीला, कृष्णलीला, हरिश्चन्द्र, नागजी और मोरध्वज की ही है। नृत्य और गीत गाते हुए सारी कथा बयान कर दी जाती है।

चिड़ावा ख्याल/शेखावाटी ख्याल

उत्तर : चिड़ावा ख्याल राजस्थानी लोकनाट्य की सबसे लोकप्रिय विद्या है। चिडावा के नानूराम इसके प्रसिद्ध खिलाड़ी रहे हैं और वे अपने पीछे इन ख्यालों की धरोहर छोड़ गए हैं। इनमें हीर-रांझा, राजा हरश्चिन्द्र, भर्तृहरि, जयदेव-कलाळी, ढोला-मरवण और आल्हादेव प्रमुख ख्याल है। इन ख्यालों में पौराणिक कथानक, हास्य प्रसंग के साथ समाज सुधार व नैतिक आदर्शो का यथार्थ प्रदर्शन होता है इस लोक नाट्य की प्रमुख विशेषताएँ - 1. सरल व सुबोध भाषा व मुद्रा में गीत गायन, 2. अच्छा पद संचालन, 3. वाद्य यंत्र की उचित संगत। इन ख्यालों के खिलाडी प्रायः मिरासी, ढोली एवं सरगडा होते है।

तुर्राकलंगी ख्याल

उत्तर : यह राजस्थान का प्रसिद्ध लोक नाट्य मेवाड के हिन्दू संत तुकनगीर व मुस्लिम संत शाह अली द्वारा 400 वर्ष पूर्व शुरू किया गया। इसमें तुर्रा (शिव) व कलंगी (पार्वती) दो दल होते है जो क्रमशः भगवा व हरे वस्त्र धारण करते हैं।

इसकी प्रमुख विशेषता हैं -

1. गैर-व्यावसायिक प्रकृति, 2. रंगमंच की भरपुर सजावट, 3. सरल नृत्य कदम ताल, 4. लयात्मक वादन। मेवाड़ के चेतराम सोनी, हमीद बेग इसके प्रमुख कलाकार है। इसमें चेग लोक वाद्य का प्रयोग होता है। इसके संवाद काव्यात्मक शैली में होते हैं। जिनमें पौराणिक एवं समाज सुधार के संवादों की गजब की तुकबन्दी होती है।

रम्मत

उत्तर : रम्मत बीकानेरी लोकनाट्य की लोकप्रिय विद्या है। इसमें सुविख्यात लोक नायकों, महापुरूषों आदि पर काव्यमय एवं समसामयिक विषयों पर व्यंग्यात्मक मंचन किया जाता है जो मनोरंजन ही प्रदान नहीं करता बल्कि शिक्षाप्रद भी होता हें इससे समाज में हो रही क्रान्ति प्रदर्शित होती है। इसमें ऊँचे पाटों पर कलाकार बैठते हैं। नगाड़ा, ढोलक वाद्ययंत्रों के साथ संवाद गाकर चौमासा, गणपति वंदना से गीत शुरू होते है। पूरन भक्त, स्वतंत्र बावनी, मोरध्वज आदि प्रमुख रम्मत हैं इसमें टेरियों एवं गायकों की प्रमुखता रहती है।

राजस्थान के भोपे

उत्तर : राजस्थान के भोपे पेशेवर पुजारी होते हैं जो मन्दिर के देवता या धाताओं के सामने नृत्यगान की लोकनाट्य शैली का मंचन करते हैं जिनमें भैरूजी के भोपे भस्म व सिंदुर लगाकर त्रिशुल धारण कर मशक बजाते हुए गाते हैं तो गोगाजी के भोपे 'डेरू' वाद्य यंत्र का प्रयोग करते हुए नाचते गाते वक्त अनेक सांपों को गले में लपेटता-उतारता रहता है। भीलों व गुर्जरों के भोपे क्रमशः रावण हत्था एवं जंतर वाद्य यंत्रों के साथ पाबूजी व देवजी की फड़ का वाचन करते हैं। इसी प्रकार रामदेवजी, करणीमाता, जीणमाता आदि के भोपे चमत्कारपूर्ण दैविक शक्ति में आस्था रखकर नृत्यगान करते है।

रूपायन संस्थान

उत्तर : जोधपुर जिले में बोरून्दा गांव में सन् 1960 में स्थापित संस्था 'रूपायन' एक सांस्कृतिक व शैक्षणिक संस्था के रूप में कार्यरत है। यह संस्था सहकारी प्रयास का प्रतिफल है। राजस्थानी लोकगीतों कथाओं एवं भाषाओं की परम्परागत धरोहर की खोजकर यह संस्था उन्हें क्रमबद्ध संकलन का रूप प्रदान कर रही है। इस संस्थान के पास स्वयं का निजी प्रेस, पुस्तकालय एवं रिकार्ड करने के उपकरण है। इसे राज्य एवं केन्द्रीय सरकार से विभिन्न मदों से अनुदान प्राप्त होता है।

चित्रशाला

उत्तर : बूंदी राजमहल में बनी 'चित्रशाला' को भित्ति चित्रों का स्वर्ग कहा जा सकता हैं। यहाँ पर ऋतुओं के आधार पर, राग-रागिनियां, नायिका भेद, कृष्णलीला के साथ-साथ उत्सवों, पर्वो, जुलूस, शिकार एवं दरबारी दृश्यों का विविध चित्रांकन अभिभूत करने वाला है। नारी चित्रांकन में कोमलता एंव सुन्दरता का अनोखा मेल है। पिछवाई शैली में रंगनाथजी, रासलीला, गोपियों से छेड़छाड़, रामायण के विविध विषयों पर चित्रांकन बूंदी चित्रशाला की विशेषता है।

बणी-ठणी

उत्तर : राजा सावन्तसिंह (भक्तवर नागरीदास, जन्म-1699 ई.) के समय में किशनगढ़ की चित्रकला में एक नवीन मोड़ आया। अपनी विमाता द्वारा दिल्ली के अन्तःपुर से लाई हुई सेविका उसके मन में समा गई। इस सुन्दरी का नाम बणी-ठणी था शीघ्र ही यह उसकी पासवान (Mistress) बन गई। नागरीदास जी के काव्य प्रेम, गायन, बणी-ठणी

के संगीत प्रेम और कलाकार मोरध्वज निहालचंद के चित्रांकन ने इस समय किशनगढ़ की चित्रकला को सर्वोच्च स्थान पर पहुंचा दिया। नागरीदास की प्रेमिका बणी-ठणी को राधा के रूप में अंकित किया जाता है।

पाबूजी की फड़

उत्तर : राजस्थान के प्रमुख लोकदेवता पाबूजी की 'प्लेग रक्षक व ऊँटों के रक्षक देवता' के रूप में मान्यता होने से ग्रामीण जनता अपनी मनौती पूर्ण होने पर इनके चारण, भाट जाति के भोपों से रावण हत्था वाद्य यंत्र द्वारा फड़ वाचन करवाती है। जिस पर पाबूजी का सम्पूर्ण जीवन वृत विभिन्न रंगों के संयोजन से वर्ण व्यंजना एवं विन्यास के जरिए प्रस्तुत किया जाता है। इस कला में फड़ चित्रण एवं लोक धर्म का अनूठा संगम मिलता है।

देवनारायणजी की फड़

उत्तर : राजस्थान के लोकप्रिय लोकदेवता देवनारायणजी की कष्ट निवारक के रूप में विशेष मान्यता होने से लोगों की मनौती पूर्ण होने पर गुर्जर जाति के भोपों द्वारा जंतर वाद्य यंत्र से इनकी फड़ का वाचन करवाया जाता हैं। इनकी फड़ सर्वाधिक बड़ी है जिस पर इनका जीवन वृत लोक शैली के चित्रों में वर्ण व्यंजना एवं विन्यास के साथ चित्रित किया जाता है। इनकी फड़ में नाट्य, गायन, मौखिक साहित्य, चित्रकला एवं लोक धर्म का अनूठा संगम मिलता है। 1992 में भारत सरकार ने इस फड़ पर डाक टिकिट जारी किया है।

कैथून

उत्तर : कोटा से 15 किलोमीटर दूर बुनकरों का एक गांव हैं, कैथून। कैथून के बुनकारों (कोली) ने चौकोर बुनाई से बनाई जाने वाली सादी साड़ी को अनेक रंगों और आकर्षक डिजाइनों में बुना हैं तथा सूती धागे के साथ रेशमी धागे और जरी का प्रयोग करके साड़ी की अलग ही डिजाइन बनाई है। पहले सूत का ताना बुना जाता हैं फिर सूत या रेशम को चरखे पर लपेटकर लच्छियां बनाई जाती है। धागे की लकड़ियों की गिल्लियों पर लपेटा जाता है, फिर ताना-बाना डालकर बुनने का काम किया जाता है। ऐसा माना जाता है कि 1716 ई. में कोटा राज्य के प्रधानमंत्री झाला जालिमसिंह ने मैसूर से कुछ बुनकरों को बुलाया तथा उनमें से सबसे कुशल बुनकर महमूद मंसूरिया था। उसने सर्वप्रथम यहाँ हथकरघा उद्योग की स्थापना कर साड़ी बुनना शुरू किया। उसी के नाम से साड़ी का नाम मंसूरिया साड़ी हो गया।

राजस्थान की शिल्प जातियां

उत्तर : राजस्थान की प्रमुख हस्तशिल्प जातियां निम्नलिखित हैं -

1. वस्त्र शिल्पी शिल्पी जाति	**कार्य**
पन्दरा/पिंजारा/नद्दाफ	रूई पिंजाई
बुनकर (कोली, बलाई)	वस्त्र बुनना
नीलगर, रंगरेज या छीपा	रंगाई, छपाई
चड़वा या बन्धारा	बन्धेज कार्य
दरजी	सिलाई

2. आभूषण शिल्पी जाति	**कार्य**
सुनार/स्वर्णकार	जेवर का कार्य
जड़िया	नगीनों की जड़ाई
बरकसाज	सोने-चांदी का बक्र
बेगड़ी	नगीनों की कटाई

3. बर्तन शिल्पी जाति	**कार्य**
ठठेरा/कसेरा/कंसारा	धातु के बर्तन बनाना
भरावा	धातु की ढलाई
कलईगर	कलई का काम

4. शस्त्र शिल्पी जाति	**कार्य**
सिकलीगर/साणगर	हथियार बनाना, तीक्ष्ण करना
लुहार	लौहे के औजार, उपकरण आदि बनाना

5. चूड़ी शिल्पी जाति	**कार्य**
लखेरा/मणियारा/चूड़ीगर	लाख की चूड़ियां

6. काष्ठ शिल्पी जाति	**कार्य**
खाती/बढई/सुथार	लकड़ी का काम
खरादी	खराद का काम
गांछी/मेहतर	बांस की टोकरी का कार्य

7. चर्म शिल्पी जाति	**कार्य**
बोळा/रेगर/मोची	चमड़े का काम
सक्का/भिश्ती	मसक का काम

8. मृण्य शिल्प/टेराकोटा शिल्पी जाति	**कार्य**
कुम्हारा/कुंभकार/प्रजापत	मिट्टी के बर्तन, खिलौने बनाना

9. पत्थर शिल्पी जाति	**कार्य**
सलावट/कारूर/सुथार	पत्थरों का तराशने का काम

मोलेला की मृणमूर्ति शिल्प

उत्तर : नाथद्वारा के निकट मोलेला ग्राम के कुम्भकार परम्परागत रूप से मिट्टी की बहुत सुन्दर मूर्तियां बनाते है। चिकनी मिट्टी को कुट-छानकर गीली मिट्टी से एक फलक तैयार कर उस पर मिट्टी की लोइयां बनाकर आकृतियों का निर्माण करके उन्हें पकाया जाता है। विभिनन देवी-देवताओं सहित उनके विविध विषय है। विशेष बात यह है कि मूर्ति बनाते समय सांचे या कोई और औजार काम में नहीं लिया जाता है। आदिवासी इनके परम्परागत क्रेता हैं जो मोलेला ही आते है। मोहनलाल राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त मोलेला शिल्पी है।

भटनेर का दुर्ग

उत्तर : हनुमानगढ़ में स्थित धान्वन कोटि का भटनेर दुर्ग का निर्माण भाटी राजा भूपत द्वारा किया गया है। भाटियों की वीरता का साक्षी, महमूद गजनवी, तैमूरलंग व कामरान का अभियान, एकमात्र दुर्ग जिसमें मुस्लिम स्त्रियों ने भी जौहर किया, उत्तरभड किवाड़, सीमान्त प्रहरी नाम से प्रसिद्ध आदि।

चित्तौड़गढ़ दुर्ग का ऐतिहासिक एवं स्थापत्य महत्व समझाइये

उत्तर : गिरि दुर्गो में राजस्थान का गौरव चित्तौड़गढ़ सबसे प्राचीन व प्रमुख है जिसका निर्माण चित्रांगद मौर्य ने किया तथा कुंभा ने परिवर्धन किया। चित्तौड़गढ़ दुर्ग पर इतिहास के प्रसिद्ध तीन शाके हुए। मातृभूमि और स्वाभिमान की रक्षा के लिए वीरता और बलिदान की जो रोमांचक गाथाएं चित्तौड़गढ़ के साथ जुड़ी है, वे अन्यत्र दुर्लभ है। यह रानी पद्मिनी का जौहर, गोरा, बादल व जयमल फत्ता के पराक्रम का साक्षी रहा है। यहाँ विजयस्तम्भ, कीर्तिस्तम्भ, पद्मिनी महल, कुंभश्याम मंदिर आदि अनेक स्मारक इसकी गौरव गाथा के साक्षी है।

कुंभलगढ़ दुर्ग का सैन्य महत्व समझाइए

उत्तर : राजसमंद में स्थित कुम्भलगढ़ दुर्ग राजस्थान का चित्तौड़गढ के बाद दूसरा सबसे महत्वपूर्ण दुर्ग है। महाराणा कुंभा ने कुम्भलगढ़ का दुर्ग बनवाया। जो सैनिक उपयोगिता और निवास की आवश्यकता की पूर्ति करता था। इसका प्रमुख शिल्पी मण्डन था। कुम्भलगढ़ दुर्ग 36 किलोमीटर लम्बे परकोटे से सुरक्षित घिरा हुआ है इसकी सुरक्षा दीवार इतनी चौड़ी है कि एक साथ आठ घुड़सवार चल सकते हैं। कर्नल टॉड ने कुम्भलगढ़ की तुलना सुदृढ़ प्राचीरों, बुर्जो, कंगूरों के विचारों से एस्टूकन से की है।

दुर्ग के अन्दर की ओर 960 के लगभग मन्दिर बने हुए हैं। दुर्ग के कैम्प्स में झीलाबाव बावड़ी, कुम्भलस्वामी विष्णु मंदिर, मामादेव तालाब, उड़ना राजकुमार की छतरी (पृथ्वीराज राठौड़) आदि अन्य प्रसिद्ध स्मारक बने हुए है। पन्नाधाय ने अपने पुत्र चंदन का बलिदान देकर अपने स्वामी उदयसिंह के प्राण इसी दुर्ग में बचाये। इसके ऊपरी छोर पर राणा कुंभा का निवास हैं, जिसे कटारगढ़ कहते है।

तारागढ़ का किला

उत्तर : गिरि दुर्ग का उत्कृष्ट उदाहरण बूंदी का तारागढ़ का किला पर्वत की ऊंची चोटी पर स्थित होने के फलस्वरूप धरती से आकाश के तारे के समान दिखलाई पड़ने के कारण तारागढ़ के नाम से प्रसिद्ध है। इस किले का निर्माण चौदहवीं शताब्दी (1334 ई) में राव बरसिंह ने मेवाड़, मालवा और गुजरात की ओर से संभावित आक्रमणों से बूंदी

की रक्षा करने के लिए करवाया था। लगभग 1426 फीट ऊंचे पर्वत शिखर पर बना यह किला पांच मील के क्षेत्र में फैला हुआ है। यह दुर्ग चारों ओर से तिहरे परकोटे से सुरक्षित है।

किले के भीतर बने महल अपनी शिल्पकला एवं भित्तिचित्रों के कारण अद्वितीय है। इन महलों में छत्र-महल, अनिरूद्ध महल, रतन-महल, बादल-महल और फूल महल प्रमुख हैं। चौरासी खम्भों की छतरी, शिकार बुर्ज तथा फूल-सागर और नवल सागर सरोवर व गर्भ-गुंजन तोप बूंदी के वैभव को दर्शाते है।

गागरोन दुर्ग

उत्तर : कालीसिंध व आहू नदी के संगम **'सामेलणी'** पर स्थित यह किला **'जलदुर्ग'** की श्रेणी में आता हैं। इसे कालीसिंध व आहू ने तीन तरफ से घेर रखा है। एक सुरंग के द्वारा नदी का पानी दुर्ग के भीतर पहुंचाया गया है। इसका निर्माण 11वीं शताब्दी में डोड परमारों द्वारा करवाया गया था। उनके नाम पर यह डोडगढ़ या धूलरगढ़ कहलाया। तत्पश्चात् यह दुर्ग खींची चौहानों के अधिकार में आ गया। **'चौहान कुल कल्पद्रुम'** के अनुसार गागरोण के खींची राजवंश का संस्थापक देवनसिंह (उर्फ धारू) था, जिसने बीजलदेव नामक डोड शासक को (जो उसका बहनोई था) मारकर धूलरगढ़ पर अधिकार कर लिया तथा उसका नाम गागरोण रखा। गागरोण का सर्वाधिक ख्यातनाम और पराक्रमी शासक अचलदास हुआ, जिसके शासनकाल में गागरोण का पहला साका हुआ। सन् 1423 में मांडू के सुल्तान अलपखाँ गोरी (उर्फ होशंगशाह) ने एक विशाल सेना के साथ गागरोण पर आक्रमण किया। इस युद्ध में अचलदास ने शत्रु से जुझते हुए वीरगति प्राप्त की। 1444 हुई में महमूद खलजी ने गागरोण पर एक विशाल सेना के साथ जोरदार आक्रमण किया। तब गागरोण का दूसरा साका हुआ। विजय की कोई आशा न देख पाल्हणसी पलायन कर गया। विजयी सुल्तान ने उसका नाम **'मुस्तफाबाद'** रखा।

लोहागढ़ अपनी अजेयता के लिए क्यों प्रसिद्ध था?

उत्तर : भरतपुर नगर के दक्षिणी हिस्से में स्थित लोहागढ़ 1733 ई. में जाट राजा सूरजमल द्वारा अपने पिता के समय बनवाया गया था। पूरा दुर्ग पत्थर की पक्की प्राचीर से घिरा हुआ है। इस प्राचीर के बाहर 100 फुट चौड़ी और 60 फुट गहरी खाई है। इस खाई के ऊपर पत्थर की प्राचीर के सहारे-सहारे मिट्टी की एक ऊंची प्राचीर है। इस प्रकार यह दोहरी प्राचीर से घिरा हुआ है। कहा जाता है कि अहमदशाह अब्दाली और जनरल लेक जैसे आक्रमणकारी भी इस दुर्ग में प्रवेश नहीं कर सके। यह दुर्ग मैदानी दुर्गों की श्रेणी में विश्व का पहले नम्बर का दुर्ग है। दुर्ग में कई दर्शनीय महल है। कमरा खास महल में विशाल दरबारों का आयोजन होता था। 17 मार्च 1948 को मत्स्य संघ का उद्घाटन समारोह भी इसी महल में हुआ था।

पराजस्थान के जैन शैली के मंदिर

उत्तर : अपने विकसित रूप से जैन एक जगती पर अवस्थित, गर्भगृह प्राय: निरंधार, मुखचतुष्की युक्त द्वार, गूढ, नृत्य तथा रंग मण्डप। जगती के किनारे देवकुलिकाएं एवं अलंकृत भरपुर तथा आमलक युक्त पिरामिडनुमा शिखर आदि मुख्य विशेषताएं है। राजस्थान में ओसियां, सेवाड़ी, नारलाई, नाकौड़ा (मेवानगर), लोद्रवा, रणकपुर, देलवाड़ा आदि के जैन मंदिर बड़े प्रसिद्ध है। जिनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध देलवाडा के विमलशाही व लूणवशाही मंदिर है। इनमें बड़े पैमाने पर श्वेत संगमरमर पर बारीक तक्षणकला बेजोड़ है।

रणकपुर मंदिर स्थापत्य

उत्तर : रणकपुर में जैन, वैष्णव व शैव मंदिर समूह कुंभाकालीन है। जिनमें सबसे सुन्दर एवं विशाल मंदिर चौमुखा मंदिर है। जिसमें कुल 24 मण्डप, 84 शिखर और 1444 स्तम्भ है। किसी भी स्तम्भ का अलंकरण दूसरे स्तम्भ से साम्यता नहीं रखता। ऊँची जागती, तोरणद्वार, सभामण्डप, गर्भगृह, देवकुलिकाएं विभिन्न मुद्राओं में उत्कीर्ण नृत्यांगनाएं आदि सभी विशेषताएं इस मंदिर में मौजूद है। इस प्रकार रणकपुर के मंदिर अपनी विशालता, कलात्मकता एवं उत्कीर्ण कला के लिए प्रसिद्ध है।

लकुलीश मंदिर

उत्तर : लकुलीश मंदिर अर्थूना : यहाँ शिवजी के 22वें अवतार भगवान लकुलीश की दो भुजाओ वाली मूर्ति बनी हुई है। मूर्ति के बायें हाथ में लकुट तथा दायें हाथ में बीजोरा का फल है। लकुलीश ने पाशुपत संप्रदाय चलाया था। उदयपुर एकलिंगजी का लकुलीश मंदिर एकदम सादा है।

नाथद्वारा मंदिर (हवेली मंदिर)

उत्तर : मुस्लिम शासकों की धार्मिक असहिष्णुता के कारण शास्त्रीय शैली के मंदिरों की बजाय हवेली शैली के मंदिरों के निर्माण की बहुलता रही। ऐसा ही मामला वल्लभाचार्य के आराध्य श्रीनाथजी के मंदिर का रहा। श्रीनाथद्वारा मंदिर के प्रमुख द्वार के अलग-बगल में गवाक्ष, द्वार के बाद लम्बी पौल फिर बडा चौक और चौक के अलग-बगल के बड़े कमरे जो देवालय है। चौक के सामने चौबारा को गर्भगृह का रूप दिया गया जहाँ श्रीनाथजी के स्वरूप को स्थापित किया गया। ये मंदिर अपनी कलात्मक संतगराशी के कारण बेजोड़ है। यहाँ रंगीन कांच एवं रंगों से बेहतरीन चित्रकारी की गई है। इसलिए विशाल हवेलियां मंदिरों के रूप में आज जगह-जगह देखी जा सकती है।

बेणेश्वर धाम

उत्तर : **'बागड़ का पुष्कर' और 'बागड़ का कुम्भ'** आदि नामों से लोकप्रिय है डूंगरपुर का बेणेश्वर धाम। यह सोम, माही तथा जाखम तीनों नदियों के संगम पर नवा टापरा ग्राम में स्थित है। बेणेश्वर स्थित शिव मंदिर इस क्षेत्र के आदिवासियों के लिए सर्वाधिक पूज्य माना जाने वाला आस्था स्थल है इसलिए इसे **'आदिवासियों का कुम्भ'** भी कहा जाता है। यहाँ हर वर्ष माघ माह में एक भव्य मेला लगता है जिसमें अन्य जातियों के अलावा हजारों की संख्या में आदिवासी नर-नारी एकत्रित होते है।

एकलिंकजी, कैलाशपुर

उत्तर : इस मंदिर का निर्माण 8वीं शताब्दी में मेवाड़ के शासक बप्पा रावल द्वारा करवाया गया था। तथा इसे वर्तमान स्वरूप महाराणा रायमल ने दिया था। गुहिल वंशीय राजाओं के श्रीएकलिंगजी इष्टदेव माने जाने लगे। इस मंदिर की पूजन पद्धति पहले पाशुपत पद्धति के अनुसार रही, क्योंकि यहां हारीतराशि, महेश्वरराशि, शिवराशि आदि आचार्य पीठासीन रहे जो पाशुपत थे। यहाँ त्रिकाल पूजा विधि पूर्वक होती है और भोग बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से चढ़ाया जाता है। मुख्य मंदिर में पार्वती, कार्तिकेय, गंगा, यमुना और गणेश की प्रतिमाएं भी है। ऐसी मान्यता है कि जब औरंगजेब की फौज मंदिर को तोड़ने के लिए यहाँ पहुंची तो इसमें से भौरें (मधुमक्खी) बड़ी संख्या में निकल पड़े और उन्होंने मुगल फौजों को तितर-बितर कर दिया।

आबानेरी

उत्तर : आबानेरी गुर्जर-प्रतिहार कालीन मंदिर एवं तक्षण कला का उत्कृष्ट केन्द्र है। दो विशाल अलंकृत जगतियों पर हर्षमाता का भव्य मंदिर सांधार व गुढ़मण्डप युक्त था। चांद बावड़ी व मंदिर की मुर्तियों में नारागज एवं दम्पत्ति की मूर्तियों में प्रेम लालसा तथा पत्नी द्वारा आनाकानी की भावना का उत्कीर्ण उल्लेखनीय है। इसी तरह अर्द्धनारीश्वर एवं नृत्य करती हुई मात्रिकाएं गंभीर और भव्यता प्रदर्शित करती हुई हैं। मंदिर की तक्षण कला में ऊंचे दर्जे की कटाव-तराश और नफासत है।

किराडू

उत्तर : किराडू का सोमेश्वर मंदिर गुर्जर-प्रतिहार शैली का अंतिम मंदिर है लेकिन यह भव्य मंदिर हैं। इसका शिखर 65 अंगों-उपांगों वाला अनेकाखण्ड शिखर हैं। मण्डप में शक्ति और सौन्दर्य, बारीकी और भव्यता का अनूठा सम्मिलन है। यहाँ के मंदिरों की मूर्तियों जिनमें नर्तकी, बंशीधर कृष्ण, यौवनोमत्त नारी, पौराणिक कथाएं एवं देव-देवता, शेषशायी विष्णु अमृत-मंथन की तक्षता कला अद्वितीय है। यहाँ मातृ ममता की बड़ी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। इसके ग्रामीण आभूषण व हाव-भव स्थानीय सभ्यता के परिचायक है।

अर्थूणा

उत्तर : अरर्थूणा 11वीं-12वीं सदी में बागड़ के परमारों की राजधानी रहा। यहाँ शिव, विष्णु, हनुमान, जैन आदि मंदिरों के अवशेष हैं जिनमें भव्य मकर तोरणद्वार, मण्डप, अलंकृत जागती आदि सभी विशेषताएँ हैं। यहाँ के मंदिरों में देव-देवियों, यक्ष-यक्षियों, अप्सराओं आदि की मूर्तियां उत्कीर्ण की गई हैं। गर्भगृह, सभामण्डप, ऊपरी व बाहरी स्तम्भों में लगी मूर्तियां तक्षण कला के न केवल सुन्दर नमूने हैं बल्कि सुन्दरता की सीमा को पार कर गई हैं। कुछेक अंकन श्रृंगारिक वासना के पोषक हैं जो दर्शकों को सहसा अपनी ओर आकर्षित करते है।

नौ चौकी

उदयपुर में राजसमंद झील की पाल का निर्माण राणा राजसिंह सिसोदिया द्वारा गोमती नदी के प्रवाह को रोककर किया गया था। इसी पाल पर स्थित 'नौ चौकी' पाल है। नौ ग्रहों के अनुरूप नौ चौकी में भी नौ के अंक का अद्‌भूत प्रयोग है। पाल की लम्बाई, 999 फीट और चौड़ाई 99 फीट है। प्रत्येक सीढ़ी 9 इंच चौड़ी और 9 इंच ऊंची है। पाल पर बनी तीन मुख्य छतरियां हैं प्रत्येक छतरी में 90 का कोण और प्रत्येक छतरी की 9 फीट की ऊँचाई है। झील के किनारे की सीढ़ियों को हर तरफ से गिनने पर योग नौ ही होता हैं और पाल पर नौ चौकियां बनी हुई, जो नौ चौकी नाम को सार्थक करती है। कहा जाता है कि इस पाल के निर्माण में उस समय 1 करोड़ 50 लाख 7 हजार 608 रूपये व्यय हुए थे। प्राकृतिक रमणीयता के बीच सफेद संगमरमर से निर्मित छतरियां, विविध दृश्यों की शिल्पकारी, नक्काशी और आकर्षक तोरण द्वार पर्यटकों को मंत्र मुग्ध कर देते हैं।

लौद्रवा

जैसलमेर से 16 किलोमीटर दूर स्थित प्राचीन लौद्रवा तत्कालीन जैसलमेर राज्य की राजधानी था। लौद्रवा जैन सम्प्रदाय का प्रमुख तीर्थ स्थल बन गया। लौद्रवा के भव्य **'चिन्तामणि पार्श्वनाथ जैन मंदिर'** का निर्माण थारूशाह भंसाली ने कराया इस मंदिर की अद्वितीय स्थापत्य कला देखते ही बनती है। मंदिर का मुख्य तोरण द्वार प्राचीन भारतीय कला का अनूठा उदाहरण है। इसके पास ही कल्पवृक्ष का कृत्रिम स्वरूप बना है। लकड़ी के इस कल्पवृक्ष पर पत्ते, फल और पक्षी बने हैं। कहा जाता हैं कि प्राचीन लौद्रवा युगल प्रेमी मूमल-महेन्द्रा का प्रणय स्थल था। शुष्क काक नदी के किनारे स्थित मूमल मेड़ी के नाम से इस प्रेमाख्यान की नायिका मूमल के महल के भग्नावशेष आज भी इस अमर प्रेम गाथा को प्रमाणित करते है।

मूमल की मेढ़ी : लोद्रवा के निकट काक नदी के तट पर एक भवन के भग्नावशेष मूमल की मेढ़ कहलाते हैं। मूमल और मेहन्द्र की प्रेमकथा विख्यात है। मूमल लोद्रवा की राजकुमारी थी तथा महेन्द्र उमरकोट का राजकुमार था। इस प्रेमाख्यान का दुःखद् अंत दिखाया गया है।

शेखावाटी की हवेलियाँ : शेखावाटी की हवेलियों का निर्माण भारतीय वास्तुकला की हवेली शैली स्थापत्य कला की विशेषताओं के अनुरूप हुआ है। रामगढ़, नवलगढ़, मण्डावा, मुकुन्दगढ़, पिलानी आदि सभी कस्बों में उत्कृष्ट हवेलियाँ हैं जो अपने भित्ति चित्रण के लिए भी विश्व विख्यात हैं। भित्ति चित्रण में पौराणिक, ऐतिहासिक व विविध विषयों का चयन, स्वर्ण व प्राकृतिक रंगों का प्रयोग तथा फ्रेस्कों बुनों, फ्रेस्कों सेको व फ्रेस्को सिम्पल विधियों का प्रयोग किया गया है। इस अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर का क्षरण हो रहा हैं जिसके सरंक्षण की आवश्यकता है। फ्रांसीसी 'नदीन ला प्रेन्स' ने इस सन्दर्भ में सराहनीय कार्य कर उत्कृष्ट उदाहरण पेश किया है।

तीज त्यौहारां बावड़ी, ले डूबी गणगौर

उत्तर : यह त्यौहार नीरस ग्रीष्म ऋतु के बाद आने वाले त्यौहारों की कड़ी का पहला त्यौहार हैं इसीलिए कहा गया है कि 'तीज त्यौहारां बावड़ी, ले डूबी गणगौर' अर्थात् तीज त्यौहारों को लेकर आती है जिनको गणगौर अपने साथ वापस ले जाती है। तीज का त्यौहार मुख्यत: बालिकाओं और नव विवाहिताओं का त्यौहार है।एक दिन पूर्व बालिकाओं का सिंजारा श्रृंगार किया जाता है। 'आज सिंजारा तड़के तीज, छौरियां न लेगी पीर' उक्त कहावत भी प्रचलित हैं। यह मुख्यत: स्त्रियों का त्यौहार है जिसमें स्त्रियाँ अपने पति की दीर्घायु के लिए वृत्त करती हैं। श्रवण शुक्ला तीज को छोटी तीज मनाई जाती है। जयपुर में इस दिन 'तीज माता' की सवारी निकाली जाती है। तीज के साथ ही मुख्यत: त्यौहारों का आगमन माना जाता है। जो गणगौर के साथ समाप्त होता है।

'चतड़ा/चतरा चौथ' गणेश चतुर्थी (भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी)

उत्तर : इसे सम्पूर्ण भारत में धूमधाम से मनाया जाता हैं विघ्न विनायक श्री गणेशजी को देवताओं में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। महाराष्ट्र में यह त्यौहार विशिष्ट रूप से मनाया जाता हैं व जुलुस निकालकर गणपति की प्रतिमा को जल में विसर्जित किया जाता है। इस पर्व का गणेश जन्मोत्सव के रूप में मानते हैं। मंदिरों में गणेशजी की झांकियाँ सजाई जाती है। यह त्यौहार 'चतरा चौथ के नाम से भी जाना जाता है। चतरा चौथ के दिन नवविवाहित पुरूषों को सिंजारा भेजा जाता है। गणेश चतुर्थी का महत्व इस दृष्टि से अधिक है कि यह बालकों का विशेष त्यौहार हैं गणेश चतुर्थी से दो दिन पूर्व बच्चों का सिंजारा दिया जाता है।

कुम्भलगढ़ शिलालेख (1460 ई.) :-

- यह लेख राजसमंद जिले के कुम्भलगढ़ दुर्ग में स्थित कुम्भस्याम मंदिर (मामादेव का मदिर -वर्तमान नाम) में संस्कृत भाषा एवं नागरी लिपि में पांच शिलाओं पर उत्कीर्ण है।
- इसमें भौगोलिक स्थिति का, जनजीवन का, एकलिंग मंदिर का वर्णन, चित्तौड़ का वर्णन- (चित्रांग ताल, दुर्ग, वैष्णव तीर्थ के रूप में) किया गया है।
- मुख्यतया कुम्भा के विजयों का विस्तार से वर्णन मिलता है।
- इसका रचयिता कान्ह व्यास है। जबकि डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द औझा के अनुसार इसका रचयिता महेश भट्ट है।

राजप्रशस्ति (1676) :-

- यह प्रशस्ति राजसंमद झील के तट पर नौ चौकी स्थान के ताकों में 27 काली पाषाण शिलाओं पर पद्य संस्कृत भाषा में उत्कीर्ण है।
- इसका रचयिता तेलंग ब्राह्मण रणछोड़ भट्ट था।
- इस प्रशस्ति के उत्कीर्ण कर्ता गजधर मुकुन्दर, अर्जुन, सुखदेव, केशव, सुन्दरलालों, लखों आदि थें।
- मेवाड़ के शासकों की उपलब्धियों का वर्णन मिलता है।
- यह प्रशस्ति जगतसिंह प्रथम तथा राजसिंह के काल की उपलब्धियाँ जानने के लिए महत्वपूर्ण स्त्रोत है, यह विश्व की सबसे बड़ी पाषाण उत्कीर्ण प्रशस्ति है।

रावण हत्था : रावण हत्था राजस्थान का अति प्राचीन व प्रचलित प्रसिद्ध तत् लोकवाद्य है जो नारियल के खोल पर चमड़ा मढ़ कर बनाया जाता है। इसमें बांस की डांड़ पर नौ तार वाली खूटियाँ लगी होती हैं जिन्हें घोड़े की पूंछ के बालों से निर्मित घुंघरू वाली गज व बायें हाथ की अंगुलियों से बजाया जाता है। भोपे व भील मुख्यतया इसका प्रयोग करते हैं। इसके साथ पाबूजी, डूंगजी, जवारजी आदि की फड़ वाचन की जाती है।

ताशा : ताशा एक चपटे और पतले नक्काड़े की शक्ल का वाद्य है जिसका पैंदा तांबे का होता हैं। यह चपटी परात की तरह होता है और इसके ऊपर बकरे का पतला चमड़ा मढ़ा जाता है। इस वाद्य को दो पतली बांसपट्टियों से बजाया जाता है। इससे तड़बड-तड़बड की आवाज निकलती हैं। मुस्लिम समुदाय द्वारा ताजियों के त्यौहार पर, कच्छी घोड़ी नृत्य में।

युद्ध विरोधी काव्य-राधा

उत्तर : सत्यप्रकाश जोशी अपने मौलिक और गैर पारंपरिक सोच के लिए अलग से उल्लेख योग्य हैं। 1960 में प्रकाशित उनकी काव्य कृति 'राधा' इस दृष्टि से रेखांकनीय है कि जहां आम राजस्थानी कविता युद्ध का गौरव गान करती हैं, जोशी यहाँ अपनी नायिका राधा के माध्यम से श्रीकृष्ण को यह संदेश देकर कि वे महाभारत का युद्ध टाल दें, युद्ध के विरोध के खड़े नजर आते हैं।

राजस्थान के पशु मेले

उत्तर : राजस्थान राज्य में प्रतिवर्ष 250 से अधिक पशु मेलों का आयोजन होता हैं। इसमें पशुपालन विभाग द्वारा 10 राज्य स्तरीय पशु मेलों का आयोजन किया जाता है। अधिकांशतः मेले व्यक्तिगत देवताओं एवं महापुरूषों के नाम से जुड़े हुए है। प्रतिवर्ष पशुओं की खरीद बेचान से 40-50 करोड़ रू. का लेन-देन पशुपालकों के मध्य होता है। राज्य स्तरीय 10 पशु मेले निम्न हैं-

क्र.	पशु मेला एवं स्थान	गौवंश	आयोजन माह
1.	श्री मल्लीनाथ पशु मेला, तिलवाड़ा (बाड़मेर)	थारपारकर कांकरेज	चैत्र कृष्णा 11 से चैत्र शुक्ला 11 (अप्रैल)
2.	श्री बलदेव पशु मेला, मेड़ता (नागौर)	नागौरी	चैत्र शुक्ला 1 से पूर्णिमा तक (अप्रैल)
3.	श्री तेजाजी पशु मेला, परबतसर (नागौर)	नागौरी	श्रावण पूर्णिमा से भाद्रपद अमावस्या (अगस्त)
4.	श्री रामदेव पशुमेला, मानासर (नागौर)	नागौरी	मार्गशीर्ष शुक्ला 1 से माघ पूर्णिमा (फरवरी)
5.	श्री गोमतीसागर पशु मेला झालरापाटन (झालावाड़)	मालवी	वैशाख सुदी 13 से ज्येष्ठ बुंदी 5 तक (मई)
6.	चन्द्रभागा पशुमेला, झालरापाटन (झालावाड़)	मालवी	कार्तिक शुक्ला 11 से मार्गशीर्ष कृष्णा 5 तक (नवम्बर)
7.	गोगामेड़ी पशु मेला, हनुमानगढ़	हरियाणवी	श्रावण पूर्णिमा से भाद्रपद पूर्णिमा तक (अगस्त)
8.	जसवंत पशु मेला, भरतपुर	हरियाणवी	आश्विन शुक्ला 5 से 14 तक (अक्टूबर)
9.	कार्तिक पशु मेला पुष्कर (अजमेर)	गीर	कार्तिक शुक्ला 8 से मार्गशीर्ष 2 तक (नवम्बर)
10.	शिवरात्रि पशु मेला, करौली	हरियाणवी	फाल्गुन कृष्णा 13 से प्रारंभ (मार्च)

हवेली संगीत : राजस्थान में बल्लभ (अष्टछाप, पुष्टिमार्गीय) सम्प्रदाय के मंदिरों में शास्त्रीय संगीत में वीणा, पखावज जैसे वाद्यों का वादन परम्परा और ध्रुपद धमार, कीर्तन की सुंदर गायन शैली का संगीत चलता रहता है। इस सम्प्रदाय के मंदिर 'हवेली' और उनमें प्रचलित यह संगीत 'हवेली संगीत' कहलाता है। जिसने इस शास्त्रीय संगीत की शैलियों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। राजस्थान में विकसित इस परम्परा ने देश को कई उच्च कोटि के गायक व वादक प्रदान किये है।

कच्छी घोड़ी नृत्य : यह राजस्थान के शेखावाटी क्षेत्र का प्रसिद्ध व्यावसायिक लोक नृत्य है जो पुरूषों द्वारा बांस की खपच्ची के लाल घोड़ों को धारण कर सामूहिक रूप से कमल के फूल की पंखुडियों के समान पैटर्न बनाते हुए किया जाता है। इसमें ढोल, बांकिया आदि वाद्ययंत्रों का प्रयोग होता है। नृत्यकार सफेद चूडीदार पायजामा, रेशमी पीली शेरवानी एवं सिर पर लाल साफा धारण कर पैरों में घुंघरू बांधते हैं। आज इसने व्यावसायिक रूप धारक कर लिया है।

गैर नृत्य : यह मेवाड़ व मारवाड़ का प्रसिद्ध लोक नृत्य हैं जो पुरूषों द्वारा सामूहिक रूप से गोल घेरा बनाकर ढोल, बांकिया, थाली आदि वाद्ययंत्रों के साथ में डंडा लेकर किया जाता हैं। मेवाड के गैरिए (नृत्यकार) सफेद अंगरखी, धोती व सिर पर केसरिया पगडी धारण करते हैं जबकि मारवाड़ के गैरिए सफेद ओंगी, लम्बी फॉक और तलवार के लिए चमड़े का पट्टा धारण करते है। इसमें पुरूष एक साथ मिलकर वृत्ताकार रूप में नृत्य करते करते अलग-अलग प्रकार का मण्डल बनाते हैं। वह बहुत ही मनोहारी नृत्य है।

जसनाथी सिद्धों का अग्नि नृत्य : बीकानेर के कतियासर ग्राम में जसनाथी सिद्धों द्वारा रात्रि जागरण के समय धधकते अंगारों के ढेर (घूणा) पर किया जाने वाला नृत्य अग्नि नृत्य कहलाता हैं। इसमें नगाड़े वाद्य यंत्र की धुन पर जसनाथी सिद्ध एक रात्रि में तीन-चार बार अंगारों से मतीरा फोड़ना, हल जोतना आदि क्रियायें इतने सुंदर ढंग से करते हैं जैसे होली पर फाग खेल रहे हो। धधकती आग के साथ राग और फाग का ऐसा अनोखा खेल नृत्य जसनाथियों के अलावा अन्यत्र देखने को नहीं मिलता।

घूमर नृत्य

उत्तर : घूमर नृत्य मांगलिक आदि अवसरों पर महिलाओं द्वारा सामूहिक रूप से किया जाने वाला प्रसिद्ध लोक नृत्य है। यह घेरदार लहंगे को पहनकर वृत्ताकार रूप से घूमते हुए किया जाता है। इसमें ढोल, नगाड़ा, शहनाई आदि वाद्ययंत्रों की धुन पर चक्कर लेते समय झुकते हुए हाथ को नीचे ले जाकर चक्कर पूरा होने के साथ-साथ बदन भी ऊपर आता हैं। इस नृत्य का गीत- 'म्हारी घूमर छ नखराली' जनमानस में छाया हुआ है। घूमर नृत्य राजस्थान का प्रतीक बनकर उभरा है जो आज के मंच प्रदर्शन का अनिवार्य अंग बन गया है।

हाड़ौती

उत्तर : हाड़ा राजपूतों द्वारा शासित होने के कारण कोटा, बूंदी, बारां एवं झालावाड़ का क्षेत्र हाड़ौती कहलाया और यहाँ की बोली हाड़ौती कहलायी, जो ढूंढाड़ी की ही एक उपबोली है। हाड़ौती का भाषा के अर्थ में प्रयोग सर्वप्रथम केलॉग की हिन्दी ग्रामर में सन् 1875 ई. में किया गया। इसके बाद ग्रियर्सन ने भी अपने ग्रंथ में हाड़ौती को बोली के रूप में मान्यता दी। वर्तनी की दृष्टि से हाड़ौती राजस्थान की सभी बोलियों में सबसे कठिन समझी जाती है।

वर्तमान में हाड़ौती कोटा, बूंदी (इन्द्रगढ़ एवं नैनवा तहसीलों के उत्तरी भाग को छोड़कर), बारां (किशनगंज एवं शाहबाद तहसीलों के पूर्वी भाग के अलावा) तथा झालावाड़ के उत्तरी भाग की प्रमुख बोली हैं। हाड़ौती के उत्तर में नागरचोल, उत्तर-पूर्व में स्योपुरी, पूर्व तथा दक्षिण में मालवी बोली जाती हैं। कवि सूर्यमल्ल मिश्रण की रचनाएँ इसी बोली में है। इसका विस्तार ग्वालियर तक हैं। हूणों एवं गुर्जरों की भाषा का इस पर प्रभाव है।

जान कवि

उत्तर : फतेहपुर (सीकर) में कायमखानी परिवार में जन्में 17वीं सदी की रीति काव्य परम्परा के प्रसिद्ध व लोकप्रिय कवि जानकवि को श्री अगरचन्द्र नाहटा द्वारा प्रकाश में लाया गया। इन्होंने 75 ग्रंथों की राजस्थानी में रचना की। इनका 'कायमरासों' (1654) राजस्थान में चरित काव्य परम्परा ग्रंथ हैं जिस पर पृथ्वीराज रासों के शिल्प का न्यूनाधिक प्रभाव है। यह रीति काव्य परम्परा का ग्रंथ हैं। पंचतंत्र के आधार पर उचित काव्य 'बुद्धि सागर' में जीवन के लोकानुभावों तथा संवेदनाओं को इन्होंने सरल सुबोध अभिव्यक्ति प्रदान की है।

सूर्यमल्ल मिश्रण की साहित्यिक उपलब्धियाँ

उत्तर : बूंदी के राजकवि सूर्यमल्ल मिश्रण षट्भाषी, व्याकरण, दर्शन, ज्योतिष आदि शास्त्रों में निष्णात कवि थे। गहन, गंभीर, मार्मिक, भावानुभूति तथा प्रखर प्रांगल अभिव्यक्ति का उत्कृष्ट निदर्शन है महाकवि का काव्य। वंशभास्कर इनका प्रसिद्ध इतिहास ग्रंथ है एवं वीर सतसई में वीररस की अतुलनीय व्यंजना है। इन्होंने बलवंत विलास, छंदोमयूख, सतीरासों आदि अनेक यशस्वी ग्रंथ लिखे। ये चारणों के सर्वोत्कृष्ट महाकवि के रूप में प्रतिष्ठित है तथा आधुनिक राजस्थानी काव्य के नवजागरण के पुरोधा कवि थे।

वल्लभ सम्प्रदाय/पुष्टिमार्गीय/अष्टछाप

उत्तर : वाराणसी के वल्लभाचार्य ने 16वीं सदी में ब्रह्म सूत्र पर अणुभाष्य लिखकर शुद्धाद्वैत मत प्रतिपादित कर पुष्टिमार्ग चलाया जो वैष्णव धर्म मे श्रीनाथ (श्रीकृष्ण) भक्ति की एक धारा थी। वह वल्लभ सम्प्रदाय कहलाया। 17वीं सदी में गोस्वामी दामोदरजी ने राजसमंद में वल्लभाचार्य के आराध्यदेव श्रीनाथद्वारा की स्थापना की। बाद में इस सम्प्रदाय की अन्य प्रमुख पीठ मथुरेशजी कोटा, द्वारिकाधीश

जी-कांकरोली, गोकुलचन्द्रजी व मदनमोहन जी कामवन में स्थापित हुई। वर्तमान में राजस्थान में 41 पुष्टिमार्गीय मंदिर हैं जो हवेलीनुमा है। इनमें मधुर शास्त्रीय संगीत बजता रहता हैं जिसे 'हवेली संगीत' कहते हैं।

निरंजनी सम्प्रदाय

उत्तर : डीड़वाना के संत हरिदास जो ने 15वीं सदी में शैव सम्प्रदाय की निर्गुण भक्ति की शाखा निरंजनी सम्प्रदाय की पीठ मारवाड़ में स्थापित की। हरिदास जी ने अपनी वाणी में अनाशक्ति, वैराग्य, आचरण शुद्धि आदि निर्गुण ज्ञानाश्रयी मार्ग का तथा दूसरी ओर सगुण भक्ति की उपासना का अवलंबन कर समन्वयवयवादी विचार दिया। इस पंथ के अनुयायी निरंजनी कहलाते हैं। जो गृहस्थी (घरबारी) एवं वैरागी (निहंग) में बंटे होते हैं। इसमें परमात्मा को अलख निरंजन, हरि निरंजन आदि कहा गया है।

बाबा रामदेव/रामसापीर

उत्तर : मारवाड़ के पंचपीरों में सर्वप्रमुख, बाड़मेर के रामदेवजी तंवर राजस्थान के प्रमुख लोकदेवता है। ये अपने अलौकिक कृत्यों से पीर की तरह पूजे जाने लगे। ये एक वीर योद्धा, सिद्ध पुरूष, कर्तव्यपरायण, जनसामान्य एवं गौ के रक्षक के रूप में प्रसिद्ध हुये। रामदेवजी ने सामाजिक समरसता, साम्प्रदायिक सौहार्द, गुरू महिमा एवं अहिंसा को प्रमुखता दी। उन्होंने जाति-पाति, छुआछूत, ऊँच-नीच के भेदभाव का विरोध कर निम्न जातियों को गले लगाया। धर्मान्तरण को रोककर इन्होंने इन निम्न जातियों को हिन्दू धर्म एवं समाज में बांधे रखने का क्रान्तिकारी कार्य किया। रामदेवरा (रूणेचा) में इनका विशाल मंदिर हैं। जहाँ भादवा में इनका विशाल मेला लगता है। यह साम्प्रदायिक सौहार्द्र का प्रतीक है।

वीर तेजाजी

उत्तर : 11वीं सदी के नागौर में जन्में (खरनाल) के तेजाजी जाट ने गौरक्षार्थ अपने प्राण न्यौछावर कर राजस्थान के लोकदेव मण्डल में अपना स्थान बनाया। ये गायों के मुक्तिदाता व सर्पो के देवता के रूप में पूजनीय है। इनमें लोगों का इतना विश्वास है कि सांप या कुत्तों का काटा हुआ पशु या नर-नारी इनकी मनौती लेने पर जीवित हो जाता हैं। कृषकों द्वारा तेजाजी के गीतों के साथ बुवाई करना, परबतसर सहित अनेक स्थानों पर मेले भरना एवं इनकी पूजा करना इनकी लोकप्रियता का प्रमाण है।

पंड़ित दुर्गा लाल

उत्तर : पंड़ित दुर्गा लाल (1948-21 जनवरी, 1990): जयपुर घराने के एक प्रसिद्ध कथक नृत्यकार थे। उनका जन्म महेन्द्रगढ़, राजस्थान में हुआ था। उन्हें 1989 में नृत्य नाटिका घनश्याम शीर्षक में मुख्य भूमिका निभाने के लिए जाना जाता है, जिसका संगीत पंडित रवि शंकर द्वारा रचा गया था और बमिघम ओपेरा कंपनी द्वारा तैयार किया गया था। भारत सरकार द्वारा 1990 में कथक प्रपत्र के क्षेत्र में उनके योगदान के लिए उन्हें चौथे सर्वोच्च नागरिक सम्मान पद्मश्री से सम्मानित किया गया था। प्रशस्ति पत्र की जरूरत, उन्हें वर्ष 1984 में संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार मिला था।

बिशनसिंह शेखावत

उत्तर : ग्राम खाचरियावास सीकर (शेखावटी क्षेत्र) में जन्में और शिक्षित, अब दिवंगत, राजस्थान के एक जाने-माने अध्यापक, शिक्षक-नेता, भारतीय उपराष्ट्रपति भैंरोसिंह शेखावत के छोटे भाई थे जो रायकीय सेवानिवृत्ति के बाद पत्रकार कवि कपूर्र चंद कुलिश के दैनिक समाचार-पत्र राजस्थान पत्रिका से जुड़े और जिन्होंने बहुत लम्बे समय तक राजस्थान के हर बड़े गांव का इतिहास और उनकी वर्तमान दशा-दिशा पर टिप्पणी अपने जनप्रिय स्तम्भं 'आओ गांव चले' में नियमित रूप से लिखी।

साहित्यकार स्व. विजयदान देथा

उत्तर : राजस्थान के प्रसिद्ध साहित्यकार देथा पदमश्री, साहित्य अकादमी पुरस्कार एवं साहित्य चूड़ामणि पुरस्कार से नवाजे जा चुके है। देथा 800 से अधिक लघु कहानियां लिख चुके हैं। जिनमें कई रचनाओं का अंग्रेजी अनुवाद भी हुआ। इनकी रचनाओं से प्रेरित होकर फिल्म एवं नाटक बने। फिल्मों में चरणदास चोर एवं पहेली प्रमुख है। इन्हें राजस्थान रत्न पुरस्कार (पहला)- 2012 से नवाजा गया है।

मांड गायिका अल्लाह जिलाई बाई

उत्तर : बीकानेर निवासी इस मांड गायिका का गाया **केसरिया बालम** गीत आज राजस्थान की पहचान बना हुआ है। कला एवं साहित्य में उनके योगदान के लिए 1982 में पदम श्री सम्मानित किया। इन्हें राजस्थान रत्न पुरस्कार-2012 से नवाजा गया है।

भतृहरि, उज्जैन

उत्तर : उज्जैन के राजा और महान योगी भर्तृहरि ने अपने अंतिम दिनों में अलवर को ही अपनी तपस्या स्थली बनाया था। उनकी तपस्या स्थली 'भर्तृहरि' के नाम से विख्यात है। ये नाथ पंथ के संत थे। वे प्रेम में डूबे तो ऐसे की अपनी पत्नी पिंगला के अलावा उन्हें कुछ भी दिखाई नहीं दिया और विराग हुआ तो ऐसा कि सब कुछ छोड़कर भिखारी बन गए। प्रसिद्ध विद्वान एवं शतकत्रयी- वैराग्य शतक, नीशितक और श्रृंगार शतक के रचयिता भर्तहरि जीवन के अंतिम दिनों में अलवर आये और यहाँ के प्राकृतिक वैभव को देखकर यहीं रम गये। यहाँ तपस्या करते-करते वे समाधिस्थ हो गये। वर्षा ऋतु में जब भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की सप्तमी और अष्टमी को यहाँ मेला लगता हैं तो यह स्थल एक लघु कुम्भ का रूप धारण कर लेता हैं। कनफड़े नाथों का तो यह तीर्थ स्थल है।

दौलतसिंह कोठारी, उदयपुर

उत्तर : इस प्रतिभाशाली वैज्ञानिक का जन्म 1906ई. में उदयपुर में हुआ। ये डॉ. मेघनाद साहा के प्रिय शिष्यों में से थे। दिल्ली विश्वविद्यालय में भौतिक विज्ञान के प्रोफेसर रहे। पं. नेहरू ने उन्हें रक्षा मंत्रालय का सलाहकार बनाया। 1964 ई. से 1966 ई. तक शिक्षा आयोग के अध्यक्ष रहे। भारतीय विज्ञान कांग्रेस के अध्यक्ष रहे। भारत सरकार ने उन्हें 1962 ई. में **'पद्म भूषण'** तथा 1973 में **पद्म विभूषण** से अलंकृत किया। ई. 1993 में उनका निधन हो गया।

देवेन्द्र झांझड़िया

उत्तर : पैरालंपिक में जेवेलियन में लगातार दूसरी बार स्वर्ण जीतकर देश के गोल्डन बॉय बने देवेन्द्र झाझड़िया चूरू के सादुलपुर के गाँव झाझड़िया की ढाणी के देवेन्द्र झाझड़िया स्वर्ण पदक जीतने में सफल रहे। देवेन्द्र के नाम सबसे लम्बी दूरी का भाला फेंकने का विश्व रिकार्ड दर्ज था। 2000 में 62.15 मीटर दूर तक भाला फेंककर पेसेफिक गेम में स्वर्ण पदक जीता। रियों में देवेन्द्र ने 63.97 मीटर दूर भाला फेंककर नया विश्व रिकार्ड बनाया है। भारत सरकार द्वारा दिए जाने वाले अर्जुन अवार्ड और राजीव गांधी खेल रत्न अवार्ड के लिए बनाई गई समिति में राजस्थान के पैराएथलीट और एथेंस पैरालिपिक के स्वर्ण विजेता खिलाड़ी देवेन्द्र झाझड़िया को भी शामिल किया गया है।

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

''महाराणा कुम्भा राजस्थान का ही नहीं वरन भारत का महान शासक था उसने सैनिक विजय के साथ-साथ स्थापत्य, संगीत, कला में भी महान उपलब्धियां अर्जित की'' व्याख्या कीजिए।

उत्तर-महाराजा कुम्भा मेवाड़ के सिसोदिया वंश के महान शासक थे। महाराणा कुम्भा का शासन काल 1433 से 1468 तक रहा, जब भारत में तुर्क साम्राज्य अपने चरम पर था। इस समय में कुम्भा ने उत्तर भारत में एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना की। कुम्भा राजस्थान का ही नही वरन भारत का एक महान शासक था वह एक महान सेनापति भी था जो कभी पराजित नहीं हुआ। उसके काल में स्थापत्य, संगीत, कला में अत्यधिक प्रगति हुई। कुम्भा की निम्नलिखित उपलब्धियां उसे भारत के महान शासकों के समकक्ष रखती है-

1. सैन्य उपलब्धियां

- सारंगपुर के युद्ध में महमूद खिलजी को पराजित किया।
- मांडू के शासक उमर खाँ को सिंहासन पर बैठाया।
- नागौर विजय।
- बूँदी विजय।
- मारवाड़-गुजरात की संयुक्त सेना को हराया

2. सांस्कृतिक उपलब्धियाँ- इस समय मेवाड ने सर्वाधिक कलात्मक और बौद्धिक उन्नति की, जो इस प्रकार है-

- सारंगपुर विजय के पश्चात 'विजयस्तम्भ' का निर्माण जिसे 'भारतीय मूर्तिकला का विश्वकोष' कहा जाता है।
- कीर्ति स्तम्भ का निर्माण।
- कुम्भा स्वयं उच्च कोटि के संगीतज्ञ थे, उन्होने संगीतराज सूड़ प्रबंध, संगीत मीमांषा, संगीत रत्नाकर जैसे ग्रन्थ लिखे।

3. दुर्गो का निर्माण

- कुल 32 दुर्गो का निर्माण जिनमे कुम्भलगढ़ दुर्ग सर्वप्रमुख है।
- अचलगढ़, वसंतगढ, भामेट आदि दुर्गो का निर्माण।

4. मंदिरों का निर्माता

- एकलिंगी जी के मंदिर, रणकापुर के जैन मंदिर का निर्माण।
- कैलाशपुरी के विष्णुमंदिर, कुशालमाता का मंदिर बिंदनौर।

5.विद्वानों का संरक्षक- वह स्वयं एक रचनाकार था, इसके अतिरिक्त विद्वानों का संरक्षक भी था जो इस प्रकार है-

- सारंग व्यास (कुंभा के संगीत गुरू)।
- शिल्पकार मंडन, जिसनें राजवल्लभ प्रसाद, मण्डन ग्रन्थ लिखे।
- कान्हा व्यास, गोविन्द राय।

इसके अतिरिक्त महाराणा कुम्भा ने राजरायन, परमगुरू, दानगुरू, राणोरासो, हिन्दू सूरताण, हालगुरू, दापा गुरू आदि उपाधियाँ धारण की। अत: इस प्रकार वह राजस्थान का ही वही भारत का महान शासक था।

राजस्थान में देशी रियासतें स्वतंत्रता आंदोलन में कैसे बाधक थी? इसके सामाधान हेतु विभिन्न प्रजामंडलों द्वारा राजस्थान में स्वतंत्रता आंदोलन हेतु क्या प्रयास किया गया?

उत्तर-स्वतंत्रता के पूर्व भारत में दो प्रकार के राज्य थे- प्रथम ब्रिटेन के सीधे शासन वाले प्रदेश, द्वितीय देशी शासकों द्वारा शासित प्रदेश। देशी शासकों द्वारा शासित प्रदेशों को पूर्णत: आन्तरिक सम्प्रभुता प्राप्त थी। स्वतंत्रता आदोलन के समय काले कानूनों और शोषण के विरूद्ध सम्पूर्ण ब्रिटिश भारत में तो आंदोलन फैल गया, परंतु रियासतों के अधीन जनता में स्वतंत्रता आंदोलन उतना तेज नहीं फैला। अत: निम्नलिखित प्रकार से देशी रियासते स्वतंत्रता आदोलन में बाधक रही है-

1. रियासते सीधें विदेशी शासकों द्वारा शासित नही थी, परिणामत: जनता की बदहाली अत्याचार और शोषण का आरोप ब्रिटिश शासकों पर नही जाता था
2. इन रियासतों की जनता जागरूक नहीं थी, रूढ़ीवादी होने के कारण शासकों के अत्याचार को ईश्वरीय मानकर सहन करती तथा उन्हें अपना पालनहार मानती थी।
3. राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं ने देशी राजाओं के अधीन सम्मिलित क्षेत्रों में आंदोलन को नहीं फैलाया, क्योंकि हमारे नेता इन रियासतों से राष्ट्रीय आंदोलन में भागीदारी या सहयोग चाहते थे।
4. रियासतों के शासक स्वतंत्रता आंदोलन का दमन करने में अंग्रेजों का साथ दे रहे थे तथा अपनी जनता को अंग्रेजी स्वामीभक्ति का पाठ भी पढ़ाते थे
5. देशी रियासतें, अंग्रेजों के लिए ढाल का कार्य करती थी जब भी उनके खिलाफ विद्रोह होता, राजा अंग्रेजों को शरण देते तथा शस्त्र तथा सेना उपलब्ध करवाते ।

प्रजामंडल द्वारा स्वतंत्रता आंदोलन हेतु प्रयास-

1. प्रजामंडल द्वारा देशी रियासतों में कांग्रेस समर्थित रचनात्मक कार्यक्रम चलाए गए, जैसे स्कूलों की स्थापना, खादी का प्रयोग।
2. प्रजामंडल ने लोगों को सामंती शोषण के विरूद्ध जागरूक किया तथा लोकतांत्रिक अधिकारों हेतु आवाज उठायी।
3. सारे देश की तरह रियासतो में भी प्रजामण्डलों द्वाराउत्तरदायी शासन की मांग की गई।
4. विभिन्न संगठनों तथा संस्थाओं का निर्माण किया जिससे राष्ट्रीय आंदोलन को आगे बढ़ाया जाए
5. विभिन्न आंदोलनों (असहयोग, सविनय अवज्ञा, भारत छोडो) के दौरान प्रजामंडलों ने स्थानीय राजाओं पर दबाव बनाए कि वे अंग्रेजों का सहयोग न करे और उनसे नाता ताड़ लें।
6. प्रजामंडलो ने समाचार पत्रों, मासिक पत्रिकाओं के प्रकाशन, अत्याचार, शोषण, सामाजिक कुरीतियों को रोककर, मजदूरों, कृषकों, की आवाज को सबल देकर राष्ट्रीय आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया।
7. प्रजामंडलों का नेतृत्व, हीरालाल शास्त्री, जयनारायण व्यास, नयन्राम शर्मा, भोगीलाल पाड्या जैसे लोकप्रिय नेताओं ने किया, जिससे इन क्षेत्रों में राष्ट्रप्रेम की भावना बलवती हुई। भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान प्रजामंडल के नेतृत्व में स्वतंत्रता सेनानियो ने कोटा में अंग्रेजी शासन का अंत कर दिया तथा जयपुर के राजा तथा जयपुर प्रजामंडल के मध्य जटिलमैन एग्रीमेंट हुआ जिसने जयपुर राज्य को अग्रेजों से संधि विच्छेद करने हेतु बाध्य कर दिया।

राजस्थान में क्षेत्रीय बोलियों के उद्भव के कारण बताइए तथा विभिन्न बोलियों का विवरण दीजिए।

उत्तर-राजस्थान का भौगोलिक स्वरूप विविधितापूर्ण है, परिणामस्वरूप यहां विभिन्न बोलियों का उद्भव हुआ। राजस्थानी भाषा भारत में बोली जाने वाली सबसे बड़ी सातवीं भाषा है। इसमें मुख्यत: मारवाड़ी, मेवाड़ी, बागड़ी, ढूंढाडी, मेवाती, मालवी आदि बोलियां है। शौरसेनी अपभ्रंश से इस भाषा का विकास हुआ है। जार्ज अब्राहम गियर्सन तथा इटैलियन विद्वान टेसीटोरी नें राजस्थानी भाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन किया। राजस्थानी भाषाओं के उद्भव के निम्नलिखित कारण रहे है-

1. विस्तृत धरातल, जिसे स्पष्ट रूप से विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है। इस भौगोलिक विभाजन का प्रभाव भाषाओं के विकास कर भी पड़ा। पश्चिमी मरूस्थलीय प्रदेश में मारवाड़ी भाषा, दक्षिण पहाड़ी प्रदेशों में मेवाड़ी भाषा तथा पूर्वी क्षेत्र में मेवाड़ी व ब्रज भाषा बोली जाती है।
2. विभिन्न जातियों के शासन से भी राजस्थानी बोलियों के विकास में मदद मिली। गुर्जर जातियों के शासन से शौरसेनी और नागरी भाषा, राजस्थानी भाषा की तरफ अग्रसर हुई जिसे प्रारंभिक रूप से गुजरी अपभ्रंश कहा गया बाद में विभिन्न राजपूत शासकों के शासन में अलग-अलग भाषाओं का विकास हुआ।
3. राजस्थानी बोलियों पर फारसी तथा तुर्की का प्रभाव भी रहा। इन भाषाओं के प्रभाव विभिन्न बोलियों पर पड़ा।

राजस्थान की महत्वपूर्ण बोलियां- राजस्थान में लगभग 73 बोलिया बोली जाती है। परंतु महत्वपूर्ण प्रभाव कुछ बोलियों का ही है। पश्चिमी राजस्थान में प्रतिनिधि बोली है- मारवाड़ी, मेवाड़ी, बागड़ी, शेखावटी। पूर्वी राजस्थान की प्रतिनिधि बोली है- ढूढ़ाड़ी, हाड़ौती, मेवाती, अहीरवाटी।

1. **मारवाड़ी**- यह यह राजस्थान की मानक बोली है, जिसे सर्वाधिक क्षेत्र में व सर्वाधिक लोगों द्वारा बोली जाती है। मारवाड़ी भाषा पश्चिमी राजस्थान के जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर, नागौर, सिरोही व सीकर आदि क्षेत्रों में बोली जाती है। मारवाड़ी की साहित्यिक भाषा शैली डिंगल है। अबुल फजल और जॉन अब्राहम ग्रियसन इसे राजस्थान की सबसे महत्वपूर्ण बोली मानते है। इस भाषा ने 'न' की ध्वनि 'ण' में ल का 'ख' में होता है तथा रा, रो री आदि प्रत्यय का प्रयोग होता है। मारवाड़ी की कुछ उपबोलियाँ भी है जैसे बागड़ी, खेराड़ी, गोदावाणी, थली, अतथी, ओसावली, दहाड़ावादी आदि।
2. **मेवाड़ी**- मेवाड़ क्षेत्र में बोली जानी वाली भाषा मेवाड़ी है। यह उदयपुर, बांसवाड़ा, डूंगरपुर, भीलवाड़ा, चित्तौड़गढ़ जिले में बोली जाती है। महाराणा कुम्भा द्वारा रचित साहित्य इसी भाषा में है। मेवाड़ी भाषा में 'ऐ' तथा 'औ' शब्द का लोप होता है इसकी जगह 'ए' तथा 'ओ' बोला जाता है।

3. **ढूँढ़ाडी-** ढूँढ़ाड क्षेत्र में (जयपुर के आस-पास) बोली जाने वाली बोली को ढूँढाडी कहते है। यह जयपुर, टोंक, दौसा तथा अजमेर में बोली जाती है। तोरावाटी, चौरासी, नागरचोल, अजमेरी इसकी उपबोलियाँ है। इसमें छैं, छू, छा छो, छी जैसी क्रियाओं का प्रयोग होता है।
4. **हाड़ौती-** हाड़ौती क्षेत्र (कोटा, बूंदी, झालावाड़) में बोली जाने वाली भाषाओं को हाड़ौती बोली कहती है। सूर्यमल्ल मिश्रण की रचनाएं इसी में लिपीबद्ध है।
5. **मेवाती-** यह बोली मेवात क्षेत्र (अलवर, भरतपुर, धौलपुर, करौली) में बोली जाती है। यह राजस्थानी और हिन्दी के मध्य सेतु का काम करती है। इसके अतिरिक्त, बागड़ी-डुंगरपुर व बांसवाड़ा में, मालवी-झालावाड़ व कोटा में तथा भरतपुर, धौलपुर में बोली जाने वाली मुख्य बोली ब्रज है।

राजस्थान में लोकप्रिय विभिन्न हस्तकलाओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर :हस्तकला से तात्पर्य हाथ से बनाई जाने वाली कलात्मक वस्तुएँ एवं कलाकृतियों से है जो इस कार्य में दक्ष हस्तशिल्पियों अथवा कारीगरों द्वारा बनाई जाती है। राजस्थान प्राचीन काल से हस्तशिल्प के क्षेत्र में विश्वविख्यात रहा है। यहाँ की निर्मित कलात्मक वस्तुएँ देश विदेश में बड़े चाव से खरीदी जाती है। राजस्थान की प्रमुख हस्तकलाएँ निम्न है-

राजस्थान में कोटा व मंगरोल की मसूरिया, मलमत व कोटा डोरा साडियॉ प्रसिद्व है। बाड़मेर का अजरक प्रिंट प्रसिद्ध है। पाती, बगरू एवं बाडमेर की ब्लॉक पेन्टिंग्स, मालपुरा की ऊनी चकमा व धुधी, बीकानेर के ऊनी सर्ज, जोधपुर की ओढ़नियॉ व चूनाडियॉ एवं डूंगरगढ़ की डूंगरशाही ओढनियॉ प्रसिद्व है।

जयपुर ब्लूपोटरी के लिए प्रसिद्व है। जिसमें चीनी मिटटी के बर्तनों पर नीले रंग से रंगीन एवं आकर्षक चित्रकारी की जाती है।

जयपुर के कृपासिंह शेखावत को ब्लू पोटरी में योगदान हेतु पद्म श्री से सम्मानित किया गया है। पोकरण की पोटरी में लाल व सफेद एवं बीकानेर को पोटरी में लाख रंग का प्रयोग होता है।

प्रतापगढ़ की मीनाकारी कला थेवा कहलाती है। जयपुर के मीनकारी का काम सोने एवं चॉदी के आभूषणों में तथा तांबे के बर्तनों में किया जाता हैं। नाथद्वारा में चॉदी तथा प्रतापगढ़ में कॉच व सोने की मीनाकरी की जाती है।

राज्य में शाहपुरा व नाथद्वारा की फड़ पेन्टिंग व पिछवाई, जैसलमेर के कम्बल, जयुपर के मूल्यवान एवं अर्द्धमूल्यवान रत्न, पत्थर (संगमरमर) की मूर्तियॉ, जोधपुर की कशीदाकार जूतियॉ (मोजड़िया) पंखे व मोठडे, बादला व बन्धेज की ओढनिया, सवाई माधोपुर के लकड़ी के खिलौने खस के पायदान, बीकानेर के नमदे, लहरिये व मोण्डे प्रसिद्व है।

राज्य में मथानियॉ की मलमल, अकोला के छपाई के घाघरे, जोधपुर की काली, हरी व लाल धारियों की चूड़ियॉ, चित्तौडगढ़ की जाजम छपाई, बीकानेर की उस्ताकला के शेखावटी के लकड़ी के नक्काशीदा किवाड़ अलवर के कागजी बर्तन किशनगढ़ की बनी उनइ पेन्टिंग प्रसिद्व है।

राजस्थानी चित्रकला के विभिन्न समुदायों व उनकी विषय वस्तु का वर्णन कीजिए।

उत्तर: सर्वप्रथम श्री आनन्द कुमार स्वामी ने अपने ग्रंथ राजपूत पेटिंग में राजस्थानी चित्रकला के स्वरूप को उजागर किया राजस्थानी चित्रकला का उद्गम स्थल मेवाड़ माना जाता है। हरिभद्र सूरि कृत समराइच्छकथा तथा उद्योतन सूरि कृत कुवलयमाल में चित्र निर्माण की पद्धति रेखांकन, रूपांकन, रंग संयोजन आदि के विस्तृत वर्णन मिलते है। राजस्थान चित्रकला के प्रमुख समुदाय निम्नानुसार हैं-

मेवाड स्कूल	**मारवाड स्कूल**	**हाडौती स्कूल**	**ढूंढाड स्कूल**
नाथद्वारा शैली	जौधपुर शैली	बूंदी शैली	जयपुर शैली
मेवाड़ शैली	बीकानेर शैली	कोटा शैली	आमेर शैली
देवगढ़ शैली	किशनगढ़ शैली		अलवर शैली
बैंगू शैली			

नाथद्वारा शैली का उद्गम श्री नाथ के मंदिर में हुआ। यह राजपूत, मेवाड़ और किशनगढ़ शैली का अनूठा मिश्रण है। पिछवाई, भित्ति चित्र एवं श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं का अंकन इस शैली का प्रमुख विषय रहा है।

मेवाड़ शैली के आरम्भिक चित्र श्रावक प्रतिक्रमण पूर्वी नामक ग्रंथ में उपलब्ध है। तथा पंद्य तंत्र, गीतगोविन्द, रागमाला रसिकप्रिया आदि प्रमुख चित्र है। ग्रंथ संख्या की दृष्टि से बिहारी सतसई, पृथ्वीराम रासो, दुर्गा सप्तसती आदि ग्रंथों पर आधारित चित्र विस्तृत फलक एवं कलापूर्ण वैभव के परिचायक है।

देवगढ़ शैली के विकास में देवगढ़ के रावत, द्वारकादास, चूडावत का योगदान है। इस शैली की मुख्य विषयवस्तु शिकार गोठ अन्तःपुर राजसी ठाठ बाट, तथा श्रंगार से संबंधित चित्र है।

जोधपुर शैली का प्रार्दुभाव राव माल देव के समय हुआ। जोधपुर शैली के चित्रों में मरू के टील, छोटे-छोटे झाड़ एवं पौधो, हिरण ऊँच, कौवे घोड़े, दरबारी ठाठ का चित्रण प्रमुख विषयवस्तु है। ढोला मारू, उजली जेठवा, मूमलदें निहालदे रूपमति बाजबहादुर आदि प्रमुख चित्र है।

बीकानेर शैली का सर्वाधिक विकास महाराजा अनूपसिंह के समय हुआ। बीकानेर शैली चित्रों का प्रमुख विषय व्यक्ति, चित्र दरबार आखेट तथा राजसी ठाठ रहा लेकिन रागमाला, रसिक प्रिया आदि आधारित चित्र भी बने। किशनगढ़ शैली का समद्धकाल सावंतसिंह के समय हुआ। इस शैली की प्रमुख नायिका बनी ठनी है जिसके लुभावने चित्र शैली की जान है।

बूँदी शैली का सर्वाधिक विकास राव सुर्जन सिंह के समय हुआ। बूँदी के चित्रों में कृष्ण लीला, रासलीला, शिकार, तीज त्यौहार एवं प्राकृतिक विषयवस्तु का चित्रण किया जाता है। चित्रशाला बूंदी चित्र शैली का श्रेष्ठ उदाहरण है।

जयपुर शैली पर मुगलों का सर्वाधिक प्रभाव था सवाई प्रतापसिंह के समय महाभारत, रामायण, कृष्णलीला, गीत गोविन्द एवं कामसूत्र पर आधारित चित्र बनाये गये।

अलवर शैली जयपुर एवं दिल्ली शैली के मिश्रण से बनी हैं इसमें राजपूतों वैभव, कृष्णल लीला, प्राकृतिक परिवेश आदि विषय वस्तु है।

हाल ही में राजस्थान सरकार ने एक राज्यस्तरीय ''धरोहर संरक्षण एवम् प्रोन्नति प्राधिकरण''स्थापित किया है। राजस्थान में पुरातात्त्विक स्थलों के संरक्षण हेतु इस प्राधिकरण को क्या कदम उठाने चाहिए सुझाव दें।

उत्तर: राजस्थान सरकार ने राजस्थान धरोहर संरक्षण एवम् प्रोन्नति प्राधिकरण का 2015 में ओंकार सिंह लाखवत की अध्यक्षता में गठन किया राज्य में प्राचीन धरोहर के संरक्षण हेतु प्राधिकरण को निम्न कदम उठाने चाहिए।

वैज्ञानिक संरक्षण :-प्राधिकरण संरक्षण व परिरक्षण हेतु वैज्ञानिक प्रक्रिया अपनानी चाहिए। इस हेतु इसे एक विज्ञान शाखा को स्थापित करना चाहिए, जिसका मुख्य उददेश्य निर्माण सामग्री में पदार्थो के क्षय रोकने आदि कार्य होने चाहिए।

संरचना संरक्षण :-संरचना को अतिरिक्त शक्ति प्रदान करने के कार्य करने के साथ उसे प्रदूषण, अम्ल वर्षा आदि से बचाने के प्रयास करने चाहिए। साथ ही उसके आसपास बिना रिहायशी बस्तियों से होने वाले नुकसान से बचाने हेतु प्रयास करने चाहिए।

जागरूकता अभियान :-प्राधिकरण को राज्य के लोगों व विशेषकर बच्चों को पुरातत्व संरक्षण के प्रयासों में जागरूकता बढ़ाने के लिए शुरू किये कार्यक्रमों में सम्मिलित करना चाहिए। पर्यटन को बढ़ावा देकर भी इन पुरातत्व स्थलों को आय का साधन बनाना चाहिए। जिससे इनके संरक्षण में आने वाले खर्च को वहन किया जा सकें।

राजपूताना के प्रजामण्डलों का जनता के सामाजिक-आर्थिक उत्थान के योगदान पर चर्चा कीजिये।

उत्तर:राजस्थान में विभिन्न रियासतों में उत्तरदायी शासन की स्थापना, मौलिक अधिकारों की चेतना जागृति करने, रियासतों में बुराईयों के अंत

के लिए प्रजामंडल संगठनों की स्थापना हुई। इनके योगदान को निम्न बिंदुवार समझा जा सकता है-

सामाजिक उत्थान

(1) शिक्षा का प्रसार हुआ।
(2) सामाजिक समरसता बढ़ी।
(3) राजनैतिक चेतना का विकास हुआ।
(4) शिक्षा के स्तर में वृद्वि हुई।
(5) छूआछूत की भावना कम हुई।
(6) सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किया गया।
(7) अधिकारों के प्रति जागरूकता आयी।
(8) देश के अन्य भागों के प्रति जुड़ाव उत्पन्न हुआ।
(9) स्वतंत्रता आंदोलन में सहभागिता बढ़ी।
(10)रचनात्मक कार्य प्रारम्भ हुए यथा बीकानेर में कन्हैयालाल व स्वामी गोपालदास ने पुत्री पाठशाला खोली।

आर्थिक उत्थान

(1) किसानों की लाग-बाग एवं बेगार में कमी।
(2) मेवाड़ में 84 प्रकार की लाग-बागे ली जाती थी यथा तलवार बंधाई चवरी कर, उन पर रोक गली।
(3) किसानों को भूमि का मालिकाना हक मिला।
(4) अकाल राहत कार्य प्रारम्भ हुए।

मध्यकालीन राजस्थान के भक्ति संतों एवं लोक देवताओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर: प्रमुख संत एव लोक देवता निम्न हैं :

- **संत पीपा:** राजस्थान में भक्ति आंदोलन की अलख जगाने वाले प्रथम संत थे
- **संत सुन्दरदास जी, दौसा :** दादू पंथ के संत।
- **संत रज्जब जी :** दादू के उपदेशों का बखान किया।
- **संत धन्ना जी :** संत रामानंद के शिष्य
- **संत चरणदास जी, मेवात :** दिल्ली जाकर अपना चरणदासी पंथ स्थापित किया।
- **भक्त कवि दुर्लभ बागड़ :** कृष्ण भक्ति के उपदेश दिए। बॉसवाड़ा व डूॅगरपुर को कार्यक्षेत्र बनाया।
- **संत रेदास जी :** रामानंद जी के शिष्य।
- **संत ईसरदास, बाडमेर**
- **संत मावजी, डूॅगरपुर :** ये कृष्ण के निष्कलंकी अवतार के रूप में प्रतिस्थापित है इनकी वाणी चौपड़ा कहलाती है।

लोक देवता

- गोगाजी, ददेरवा (चूरू): इन्हें नाहरपीर भी कहते है। ये नागों के देवता माने जाते हैं।
- **पाबूजी, कोलमण्ड (जोधपुर):** गौरक्षक देवता एव ऊॅटों के देवता माना जाता है।
- **बाबा रामदेव :** इन्हें रामसापीर कहा जाता है
- **हड़बूजी, नागौर :** बेंगरी गौव में कार्य सिद्ध होने प हड़बू जी की गाड़ी की पूजा की जाती है।

  मेहाजी मांगलिया, जैसलमेर : ये पंचपीरों में गिने जाते हैं।
- **देवनारायण जी, आसींद :** विष्णु के अवतार माने जाते है।
- **मल्लीनाथ जी**
- **वीर तेजाजी, खरनाल (नागौर) :** इन्हें धौलिया पीर भी कहा जाता है।
- **वीर कल्ला जी, मेवाड़ :** ये शेषनाग के अवतार थे।

राजस्थान के दुर्ग स्थापत्य की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

राजस्थान में दुर्गो का अत्यधिक महत्व रहा है। अत: राजस्थान में किलों का निर्माण बड़े पैमाने पर किया गया। राजाओं तथा सामन्तों द्वारा अनेक किले बनवाये गए। राजस्थान के दुर्ग-स्थापत्य की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

1. 'शुक्रनीति सार' में दुर्गों के 9 प्रकार बताए गए है। 1. एरण दुर्ग 2. परिखा दुर्ग 3. पारिध दुर्ग 4. वन दुर्ग 5. धन्वन दुर्ग 6. जल दुर्ग 7. गिरि दुर्ग 8. सैन्य दुर्ग 9. सहाय दुर्ग

उपर्युक्त सभी दुर्गों में सैन्य दुर्ग सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। गिरि दुर्गों में चितौड़, कुम्भलगढ़, रणथम्भौर, सिवाणा, जालौर, जोधपुर का मेहरानगढ़, आमेर का जयगढ़ आदि उल्लेखनीय है। जल दुर्ग की कोटि में गागरौन का दुर्ग आता है।

2. - मध्यकाल में भारत में मुस्लिम सत्ता स्थापित होने के बाद दुर्ग स्थापत्य कला में परिवर्तन आया। अब ऊँची और चौड़ी पहाड़ियों पर दुर्गों का निर्माण किया जाने लगा, जहाँ कृषि तथा सिंचाई के साधन उपलब्ध थे। यदि ऐसी पहाड़ियों पर प्राचीन दुर्ग बने हुए थे, तो उन्हें फिर से नवीन रूप दिया गया।

3. - अधिकांशत: किलों का निर्माण **सामाजिक महत्त्व** के स्थानों पर कराया गया जो मुख्य रूप से विस्तृत राजमार्गो पर बने हुए है। पहाड़ों, दर्रो, घाटियों और रास्तों को दुर्गो से आच्छादित कर दिया गया ताकि आक्रमणकारियों से अन्त:स्थित प्रदेश की रक्षा की जा सके। अत: जालौर, सांचौर, सिवाना, मण्डौर और जोधपुर के किले दुर्गम स्थलों पर बने हुए।

4. - अधिकांश किले ऊँची पहाड़ी एवं चौड़ी दीवारों से सुरक्षित कर दिए जाते थे। बुर्जो से युक्त इस चारदीवारी में 3-4 फुट की दूरी पर छेद रखे जाते थें ताकि किले के सैनिक अपने को सुरक्षित रखते हुए नीचे के शत्रु-सैनिकों पर आसानी से आक्रमण कर सकें। दुर्ग में प्रवेश करने के लिए कई दरवाजे होते थे, दुर्ग में गुप्त द्वार भी बनाए जाते थे। जिनका संकटकाल में प्रयोग किया जाता था। राजस्थान के रेतीले इलाके में जहाँ किले मैदान में ही बनाए जाते थे और उन्हें ऊँची दीवारों के साथ-साथ चारों ओर गहरी खाइयाँ खोद कर सुरक्षित कर दिया जाता था। जैसे - बीकानेर का किला

5. - घुमावदार प्राचीरें, उन्नत और विशाल बुर्जे तथा विशाल पर्वत की घाटी के कारण संकरा मार्ग चित्तौड़ के दुर्ग की स्थापत्य की विशेषताएँ है। कुम्भलगढ़ के पहाड़ों के ढाल पर परकोटा बना हुआ हैं जिसमें बुर्जे तथा मोर्चे बने हुए है, प्राचीर की दीवारें इस प्रकार बनाई गई थीं कि सीढ़ियाँ आदि से चढ़ना कठिन है। किले की दीवार इतनी चौड़ी हैं कि चार घुड़सवार एक साथ इस पर चल सकते है।

6. - दुर्गो में राजप्रासाद, मन्दिर, बावड़ियाँ, तालाब, अन्न भण्डार, शस्त्रागार, सैनिकों तथा जन-साधारण के आवास-गृह, बाजार, बाग-बगीचे आदि बने हुए थे। प्राय: सभी दुर्गो में सुदृढ़ प्राचीर, विशाल परकोटे, अभेद्य बुर्ज, दुर्ग के चारों ओर गहरी नहर, जलाशय अथवा पानी के टाँके, तथा सैनिकों के आवासगृह बने हुए थे। चित्तौड़ में महाराणा कुम्भा के महल, राजकुमारों के महल आदि दर्शनीय है। आमेर के महल स्थापत्य कला के उत्कृष्ट नमूने हैं जो स्थानीय शिल्प के आधार पर बनाकर मुगल अलंकरण से सुशोभित है।

चित्तौड़ के दुर्ग के कुम्भश्याम का मन्दिर, त्रिभुवन नारायण का मन्दिर, अद्भुतजी का मन्दिर, नीलकण्ठ और अन्नपर्णा के मन्दिर आदि बने हुए है।

कुम्भलगढ़ के दुर्ग में नीलकण्ठ महादेव का मन्दिर बना हुआ है जो स्थापत्य कला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। कुम्भलगढ़ के दुर्ग में निचले वाले भाग में छोटे-छोटे जलाशय भी बने हुए है, जिनका उपयोग स्थानीय खेती के लिए किया जाता था।

राजस्थान की लोक चित्रण परंपरा पर संक्षिप्त लेख लिखिए।

लोक चित्रण की परम्परा संस्थागत नियमों पर आधारित न होकर परम्परागत आवश्यकताओं व सुविधाओं के अनुसार पल्लवित होती है। राजस्थान में ग्रमीण समुदाय द्वारा अपनी धार्मिक व सामाजिक अभिव्यक्ति हेतु चित्रण की विभिन्न परम्पराएं रही है जिनका संक्षिप्त शब्द चित्र प्रस्तुत है।

फ्रेस्को बूनो चित्रण (आरायश, आलागीला, मोरकसी, पणा) भित्ति चित्रण की परम्परा हैं। ताजा प्लस्तर की गई नम दीवार पर किया गया चूना मिश्रित रंगो का प्रयोग फ्रेस्को कहलाता है। मूल रूप से इटली

की कला है तथा सर्वाधिक जयपुर, शेखावती में प्रसिद्ध रही। इसे राजस्थान की ओपन एयर आर्ट गैलेरी कहा जाता है वर्तमान में शहरी व कस्बा सौन्दर्यीकरण परम्परा के अन्तर्गत फ्रेस्को चित्रण जारी हैं।

मॉडणा कला राजस्थान की भित्ति चित्रण परम्परा की सर्वप्रसिद्ध पहचान है इसमें गेरू, हिरमच, खडी के प्राकृतिक रंगो का प्रयोग कर ग्रामीण महिलाएं ज्यामितीय अंलकरण फर्श पर बनाती हैं। मीणा जनजाति में इसी परम्परा के अन्तर्गत दीवार पर मोरनी का चित्र बनाने की परम्परा है, जिसे मोरडी माँडना कहा जाता है।`

भील वैवाहिक भित्ति चित्रण की परम्परा के अन्तर्गत भराडी चित्रण की परम्परा में पार्वती पर आधारित एक मन्दिरनुमा चित्र भील वधु द्वारा दीवार पर उकेरा जाता है। इसमें गोबर, हल्दी, काँच आदि का वैविध्य प्रयोग किया जाता है। मान्यता के अन्तर्गत कच्चा चित्र वधु व पक्का चित्र बारात आगमन के पश्चात् वर द्वारा पूर्ण किया जाता है। यह परम्परा वर-वधु द्वारा जीवन व प्रकृति को पूर्णता देने का प्रयास माना जा सकता है।

सांझी चित्रण की परम्परा श्राद्ध पक्ष के अवसर पर सम्पन्न होती है। इसमें परिवार की युवतियों द्वारा अपने पितृजनों को चित्रो के माध्यम से श्रद्धा अर्पित की जाती है। दीवारो पर देवी-देवताओ के सांकेतिक चित्र बनाए जाते है। श्री नाथ जी मन्दिर में विभिन्न उत्सवो पर केले के पत्तो की सांझी बनाई जाती है।

भित्ति चित्रण के अतिरिक्त लोक चित्रकला के अन्य आयामों में 'फड चित्रण' का प्रधान केन्द्र शाहपुरा भीलवाड़ा हैं। कपड़े पर लोक देवी-देवताओं की चित्रित गाथा फड कहलाती है, तथा इन घटनाओं का वाचन भजन रूप में होता है। फड की लम्बाई 24 फुट तथा चोड़ाई लगभग 7 फुट होती है। इसमें नायक का रंग लाल व खलनायक का काला होता है। दुर्गालाल, श्री लाल, पार्वती जोशी, गौतली देवी फड के प्रधान कलाकार रहे है।

कावड़ चित्रण की परम्परा हेतु बस्सी गाँव(चित्तौड़) तथा खेरादी जाति प्रसिद्ध है इसमें लकड़ी का एक मन्दिर नुमा ढ़ाचा कावड कहलाता है तथा कावड़ की दीवारो पर देवी देवताओं के जीवन से सबंधित विभिन्न चित्र होते है। वर्ष 2014 के गणतंत्र दिवस परेड दिल्ली में राजस्थानी झाँकी के अन्तर्गत कावड़ का प्रदर्शन हुआ।

कांच पर सोने का सूक्ष्म चित्रांकन भेवा कला कहलाता है। प्रतापगढ़ का राजसोनी परिवार प्रसिद्ध है। इन्साइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटानिका में भी इस कला का नाम दर्ज है। इस हेतु विशेष प्रकार का कांच बेलिजयम में आयात होता है। परम्परा के अनुसार यह कला केवल इसी परिवार की धरोहर है तथा परिवार के पुरूष सदस्यों को ही हस्तान्तरित होती है। अत: इसे हिडन आर्ट भी कहा गया है।

पिछवाई चित्रण (नाथद्वारा) कपड़े पर कृष्ण भक्ति से संबंधित चित्रण की धार्मिक परम्परा है, श्री नाथ जी की मूर्ति के पीछे चित्र लगाए जाते है, अत: पिछवाई कहलाते है।

ऊँट की खाल पर चित्रण की उस्ता कला बीकानेर से संबंधित है। हिसामुद्दीन उस्ता इसके प्रसिद्ध कलाकार थें, जिन्हे पद्म श्री भी प्राप्त हुआ।

चीनी मिट्टी के बर्तनो पर नीले रंग का चित्रण ब्लु पॉटरी कहलाता है। ईरान से संबंधित इस कला को आमेर के मानसिंह - I द्वारा आरम्भ करवाया गया। कृपाल सिंह शेखावत इसके प्रसिद्ध कलाकार थे।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राजस्थान में लोक चित्रण परम्परा वैविध्य पूर्ण है, तथा सनातन परम्परा इसे लगातार जीवित रखती है फिर भी सरकारी, गैरसरकारी, निजी सहभागिता द्वारा इन कलाओं को जीवित रखना अनिवार्य है। कलाकारो को लगातार पुरस्कृत करना, विभिन्न प्रदेशों में सहभागी बनाना तथा कला को व्यावसायिक स्तर तक पहुँचा कर इन्हें सुरक्षित बनाया जा सकता है।

1857 के विद्रोह में राजस्थान की भूमिका का परीक्षण करते हुए इस विद्रोह के प्रति जागीरदारो के दृष्टिकोण की विवेचना करों ।

भारत के स्वतंत्रता संघर्ष में राजस्थान के स्वतंत्रता संग्राम की भी महत्वतूर्ण भूमिका रही। दोनो में ही स्वतत्रंता के लिए संघर्ष एक साथ शुरू हुआ। इस प्रकार राजस्थान की भूमिका इस संग्राम में निम्न प्रकार दृष्टिगोचर होती है-

1. प्रारम्भिक जनाक्रोश एवं चेतना का विकास
2. नवचेतना का उदय
3. कृषक एवं आदिवासी आंदोलन
4. क्रांतिकारी आंदोलन
5. विभिन्न संगठनो के प्रयास - जैसे राजपूताना मध्य -भारत सभा, राजस्थान सेवा संघ आदि।
6. प्रजामण्डलो की स्थापना।
7. समाचार पत्रो एवं साहित्य की भूमिका
8. शासको में अंग्रेज विरोधी भावना का पनपना।

इस प्रकार इस जन-आंदोलन को कुछ देशी रियासतो का अप्रत्यक्ष समर्थन हासिल था। जिसे निम्न बिन्दुओ के वर्णन से समझ सकते है-

(1) मेवाड के सामन्तों की क्रांतिकारियों के प्रति सहानुभूति
(2) सलूम्बर के सामन्त रावत केसरीसिंह का योगदान
(3) मारवाड़ के सामन्तो का योगदान
(4) मारवाड़ के सामन्तो का ब्रिटिश बिरोधी होना।

इस प्रकार राजस्थान में सामन्त वर्ग इस विद्रोह में दो भागों बटाँ हुआ था। कुछ रियासतो ने खुलकर अंग्रजो को समर्थन व सैन्य सहायता के फलस्वरूप अंग्रेज इन देशी शासको की सहायता से 1857 के विद्रोह का दमन करने में सफल रहें।

राजपूत (राजस्थानी) चित्रकला की मुख्य विशेषताओं की विवेचना कीजिए।

उत्तर : 16वीं से 19वीं सदी तक विभिन्न शैलियों, उपशैलियों में परिपोषित राजस्थानी चित्रकला निश्चय ही भारतीय चित्रकला के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। अनेक समकक्ष शैलियों से प्रभावित होने के पश्चात् भी राजस्थानी चित्रकला का अपना मौलिक स्वरूप/निजी विशेषताएं हैं, जो निम्नलिखित हैं -

1. **प्राचीनता :-** राजस्थानी चित्रकला की शैली की प्राचीनता प्रागैतिहासिक काल तक जाती है। जिसकी निरंतरता बनी हुई है। 'दर' भरतपुर से पाषाण कालीन-गुहाचित्र मिलते है।
2. **भारतीयता :-** यह विशुद्ध भारतीय शैली है जिसमें प्रत्येक चित्र पर भारतीयता की छाप दिखाई देती है।
3. **कलात्मकता :-** इस शैली में अजन्ता शैली, जैन शैली, अपभ्रंश शैली और मुगल शैली का समन्वय होकर एक नई कलात्मकता विकसित हुई है।
4. **रंगों की विशिष्टता :-** राजस्थानी चित्रकला में भड़कीले, चटकीले, लाल पीले रंगों का प्रयोग एवं उनकी वर्ण व्यंजना तथा विन्यास अभूतपूर्व है।
5. **नारी सौन्दर्यता :-** यह शैली नारी सौन्दर्यता की खान है जिसमें कमल की तरह उत्फुल्ल बड़े नेत्र, लहराते हुए केश, घन स्तन, क्षीणकटि और लालित्य अंगयष्टि समाया हुआ है।
6. **प्रकृति परिवेश की अनुरूपता :-** प्राकृतिगक सरोवर, कदली वृक्ष, उपवन, पेड़-पौधे, फूल-पत्तियां, पशु-पक्षी, केलि करते हुए हंस, सतरंगा गगन आदि का सुन्दर चित्रांकन राजस्थानी चित्रकला की अपनी विशेषता है।
7. **विषयवस्तु का वैविध्य :-** यह शैली विषय वस्तु की दृष्टि से अत्यधिक वैविध्पूर्ण है। यह पौराणिक, ऐतिहासिक, वीर रस एवं श्रृंगार रस, शिकार, युद्ध, दरबारी इत्यादि असंख्य विषयों पर आधारित है। बारहमासा, रागरागिनी आदि काव्य इस चित्रशैली की अपनी निजी विशेषता है।
8. **देशकाल की अनुरूपता :-** इसमें राजपूती सभ्यता और संस्कृति तथा तत्कालीन परिस्थिति, भक्तिकाल एवं रीति काल का सजीव चित्रण हुआ है।
9. **राजस्थानी संस्कृति की अभिव्यक्ति :-** राजस्थानी चित्रकला में राजस्थानी संस्कृति के हर पहलू को चित्रित किया गया है। यहाँ के

लोक देवी-देवता, संत, कवि, मान्यताएं, संस्कार आदि सभी की स्पष्ट अभिव्यक्ति की गई है।

10. लोक जीवन की भावनाओं की बहुलता एवं जनसमुदाय को महत्व दिया गया है।
11. मनो भावों की चित्रात्मक अभिव्यक्ति राजस्थानी चित्रशैली का प्राण है। भक्ति एवं श्रृंगार का समांजस्य इस शैली में विशेष देखने को मिलता है।

इस प्रकार भारतीय चित्रकला की सर्वोत्कृष्ट दाय अजंता शैली की समृद्ध परम्परा को वहन करने वाली राजस्थानी चित्रकला का महत्व बरकरार है। मेवाड़ में जन्मी एवं सम्पूर्ण राजस्थान में शैलियों, उपशैलियों के माध्यम से विकसित एवं पल्लवित होकर राजस्थानी चित्रकला ने भारतीय कला जगत को विशेषत: समृद्ध किया है।

राजस्थान के मेले और त्यौहारों की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर : मेले से अभिप्राय है कि एक विशेष स्थान पर जनसमूह का मिलना और सामूहिक रूप से उत्सव मनाना। ये स्थानिक, देशव्यापी, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक रूपों में होते हैं।

लोक उत्सव (त्यौहार) - प्रत्येक लोकोत्सव किसी धार्मिक, ऐतिहासिक, सामाजिक विचारधारा, महापुरूषों से संबंधित, नई फसल पकने, ऋतु परिवर्तन आदि विशेष घटना से जुडे उत्सव होते हैं जहाँ लोक आनन्दोल्लास करता हैं।

मेले एवं त्यौहारों का महत्व :

1. **सामाजिक समरसता एवं भाईचारे को बढ़ावा :-** विभिन्न उत्सव एवं मेलों में सभी जाति के लोग आपस में मिलते हैं और भाईचारे की भावना का प्रदर्शन करते हैं। उनमें आपसी प्रेम, स्नेह, सौहार्द, मैत्री जनसेवा की भावना में वृद्धि होती हैं तथा सामाजिक मेल-मिलाप को बढ़ावा मिलता है।
2. **राजस्थान की लोक संस्कृति की झलक :-** राजस्थान के मेले एवं त्यौहारों पर गाये जाने वाले गीत, लोक-वार्ताएं, वादन, नृत्य आदि में धार्मिक निष्ठा एवं ऐतिहासिक तथ्य होते हैं। यहाँ का जन समूह विभिन्न प्रकार की वेशभूषा, आभूषण पहनकर परम्पराओं, नाचगान आदि की रंग बिरंगी छटा बिखेरते हैं जहाँ राजस्थान की लोक संस्कृति साकार हो उठती है।
3. **सामाजिक-साम्प्रदायिक सौहार्द को बढ़ावा :-** इन मेलों एवं उत्सवों के साथ प्राचीन परम्पराएं तथा विचार धाराएं जुड़ी रहती हैं इनको सभी धर्मावलम्बी एक सामाजिक कार्य मानते हैं जिससे वे एकता का अनुभव करते हैं तथा साम्प्द्रायिक सौहार्द कायम रहता है।
4. **राजस्थान की हस्तकला को बढ़ावा :-** इन मेलों एवं उत्सवों के दौरान राजस्थानी ग्रामीण समाज अपनी आवश्यकतानुसार लोक देवी-देवताओं, महापुरूषों की मूर्तिचित्र, लोकवाद्य यंत्र, वस्त्र, आभूषण व घरेलू सामान आदि खरीदकर राजस्थानी हस्त कला को जीवित रखे हुए हैं।
5. **आदिवासी संस्कृति को जीवित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका :-** राजस्थान के पूरे दक्षिणाचंल में आदिवासी मेले ही सर्वाधिक हैं जिनमें, बेणेश्वर, गौतमश्वेर, भेड़माता आदि प्रमुख है। इन मेलों में हमें राजस्थान की वास्तविक संस्कृति के दर्शन हो जाते हैं जिन्हें आदिवासियों ने सहेजकर रखा हुआ हैं। इनमें आदिवासियों के विभिन्न नृत्य, गायन, वादन, नाट्य उनके वस्त्राभूषण, बोली, परम्पराएं, संस्कार आदि दिखाई देते हैं। सहरिया, भील आदि जनजाति इन मेलों द्वारा ही अपना जीवन साथी चुनती है।
6. **लोक संस्कृति को बढ़ावा :-** इस मेले एवं त्यौहारों में लोक-नाट्य, तमाशा, नृत्य, वादन, गायन आदि का प्रदर्शन करते समय विभिन्न वेशभूषा एंव आभूषणों को धारण किया जाता है। दस्तकारों या कृषकों के जातिगत झगडें भी मेलों के आयोजनों के समय निपटाये जाते हैं।
7. **देवी-देवताओं एवं सन्तों के प्रति श्रद्धा की अभिव्यक्ति :-** अपनी मनोकामनाओं की सिद्धि के लिए इन मेलों एवं उत्सवों के अवसर पर लोग देवी-देवताओं या संतों के स्थान पर सामूहिक रूप से एकत्रित होते हैं। जिनमें भजन भाव, नृत्य भक्ति आदि से जनता विभोर होती हैं और स्नान व अर्चना से अपने को कृतार्थ समझती है। पीढ़ी दर पीढ़ी यह परिपाटी प्रवाहमान रहती है।
8. **जन समूह में नई प्रेरणा का संचार :-** ऐसे मेलों के समय लोकनायकों के चरित्र एवं जीवन लीला की याद अनायास आ जाती है। जब ये पार्थिव रूप से वहाँ उपस्थित होते हैं ता उसके चरित्रों का स्मरण और उनकी गाथाओं का श्रवण जन समूह में एक नई प्रेरणा का संचार करता हैं। पाबूजी, रामदेवजी, गोगाजी, देवनारायणजी, करणीमाता आदि इन महान् आत्माओं ने अपने सम्पूर्ण जीवन को जनकल्याण के लिए अर्पित कर अमरत्व प्राप्त किया। इन्होंने सदमार्ग दिखाया। जनमानस उन्हीं के द्वारा बताये गये सद्मार्ग पर आज भी चल रहा है।
9. **आर्थिक मेले :-** राजस्थान के पशु मेले आज भी राजस्थान की बहुसंख्यक ग्रामीण जनता का आर्थिक आधार है। इन मेलों में विभिन्न पशुओं का बड़े पैमाने पर लेन-देन होता हैं साथ ही यहाँ राज्य के विविध प्रकार के हस्तशिल्प, लघु उद्योग निर्मित विभिन्न प्रकार की वस्तुएं बेची खरीदी जाती हैं। राजस्थान में परबतसर, नागौर, पुष्कर, गौमतेश्वर, गोगामेड़ी और ऐसे ही अनेक मेले बड़े स्तर पर पशुओं एवं अन्य सामानों की खरीद स्थल रहे हैं। वर्तमान में आधुनिकता ने इनके परम्परागत व्यवसाय को प्रभावित किया है।

उपर्युक्त एवं संक्षिप्त बिन्दुओं के अध्ययन से राजस्थान को लोक संस्कृति एवं आर्थिक विकास में मेले एवं त्यौहारों का महत्व स्पष्ट हो जाता है।

राजस्थानी साहित्य में 'राष्ट्रीय धारा' पर एक लेख लिखिए

उत्तर : राजस्थानी साहित्य में प्राचीन काल से ही राष्ट्रीय विचार धारा का प्रभाव स्पष्ट एवं व्यापक रूप से दिखाई देता है। लेकिन 'राष्ट्रीय धारा' की स्पष्ट छाप सर्वप्रथम सूर्यमल्ल मिश्रण के ग्रंथों में दिखाई देती है। उन्होंने अपनी लेखनी से सोये हुए समाज को जगाया और उसमें राष्ट्रीय भावना की प्रेरणा भर दी। वे अपने ग्रंथ **'वीर सतसई'** में अंग्रेजी दासता के विरूद्ध बिगुल बजाते हुए दिखाई देते हैं। वे नवजागरण के पहले कवि थे जिन्होंने राजस्थानी जनमानस में जिस राष्ट्रीयता का शंख फूंका था, वह आगे चलकर राष्ट्रीय चेतना बनी।

सूर्यमल्ल के अतिरिक्त गिरवरदान, भोपालदास, केसरीसिंह बारहठ आदि ने अपनी लेखनी से तत्कालीन जनमानस में सामन्तशाही व ब्रिटिश राज के प्रति आक्रोश व उनकी विभिन्न आकांक्षाओं को प्रभावशाली अभिव्यक्ति दी। पुरानी परम्परा के कवि उदयराज उज्जवल तक ने पुरानी मान्यताओं को तिलांजलि दे अपने ओजस्वी स्वर व देशभक्ति काव्य से एक नई राष्ट्रीय चेताना का संचार किया।

स्वातंत्र्य चेतना, सामजिक-राजनीतिक बदलाव के अग्रणी स्वतंत्रता सेनानियों ने भी अपनी राष्ट्रीय एवं देश-प्रेम की कविताओं से जनचेतना जगाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। ऐसे मनीषियों में हरिभाई उपाध्याय, गोकुल भाई भट्ट, विजयसिंह पथिक, जयनारायण व्यास आदि उल्लेखनीय है। इस काल की लेखनी में राष्ट्रीय विचारधारा और स्वाधीनता की चेतना जगाने के साथ ही मानवीय स्वतंत्रता की भावना बलवती रही जो सुधीन्द्र के समस्त काव्य में विलक्षणता के साथ मुखरित होती है। उनकी कृति 'अमृत लेख' में देशभक्ति, समाज, रचना, स्नेह के अपरिसीमित बंधन, देश के दासत्व की पीड़ा और उससे उत्पन्न क्रान्ति सब कुछ है। इस श्रृंखला में चन्द्रसिंह अपनी कृति बादली व लू के कारण चर्चित रहे। जर्नादन नागर, हरिनारायण शर्मा, रामनाथ सुमन, लक्ष्मस्वरूप त्रिपाठी आदि इस धारा के उल्लेखनीय कवि है।

देश की स्वतत्रंता के अंतिम चरण के साथ ही राजस्थान में राष्ट्रीय विचारधारा एवं चेतना के रचनाकारों की एक नयी पीढ़ी उभरकर सामने आई। यह पीढ़ी थी कन्हैयालाल सेठिया, रांगेय, राघव, मेघराज मुकुल, नन्द चतुर्वेदी आदि की। इन कवियों ने राष्ट्रीय धारा के साथ-साथ संस्कृत, हिन्दी में भी साहित्य लिखा गया जिनके विषय सम्पूर्ण समाज का नेतृत्व करते थे। इस प्रकार हम कह सकते हैं। कि

राजस्थानी साहित्य में राष्ट्रीय विचारधारा का व्यापक समावेश था जिसका स्पष्ट प्रभाव आधुनिक काल के विषय में परिलक्षित होता है।

राजस्थानी भाषा का लोक साहित्य एवं उसकी विशेषताओं के बारे में बताइए

उत्तर : लोक साहित्य वस्तुत: लोक की मौखिक अभिव्यक्ति है तथा अभिजातीय शास्त्रीय चेतना से शून्य हैं। इसमें समूचे लोक मानस की प्रवृत्ति समाई रहती है। यह अतीत से वर्तमान और वर्तमान से भविष्य का संचरण करता हैं। राजस्थानी लोक साहित्य भारतीय वागमय की एक विशिष्ट सम्पदा हैं। राजस्थानी साहित्य विषय और शैली भेद के आधार पर छ: वर्गों में विभाजित है जैसे संत साहित्य, चारण साहित्य, रासो साहित्य, वेलि साहित्य आदि में से एक प्रकार है लोक साहित्य का। राजस्थानी भाषा की विभिन्न बोलियों में रचित लोक साहित्य के लेखन में विभिन्न विधाओं को यथा-लोक गीत, लोक कथाओं, लोक गाथाओं, लोक नाट्यों, कहावतों, पहेलियों, श्लोकों तथा तंत्र-मंत्रादि का प्रयोग हुआ हैं। इन्हें निम्नलिखित रूप से स्पष्ट किया जा सकता है।

राजस्थानी 'लोकगीतों' की भावभूमि बड़ी व्यापक है जीवन का कोई ऐसा पहलू नहीं, पक्ष नहीं जिस पर राजस्थानी लोकगीत न मिलते हों। वात्सल्य, श्रृंगार, शंकुन-अपशकुन, सामाजिक-धार्मिक त्यौहार, पर्व संरकार आदि सभी लोकगीतों में समाहित है। इनमें वीररस को अधिक महत्व दिया गया है। लोक कथाओं में लोक मानस की सब प्रकार की भावनायें तथा जीवन दर्शन समाहित रहता हैं। राजस्थानी लोक कथायें विषयवस्तु, कथाशिल्प व साहित्यिक सौंदर्य सभी दृष्टियों से अत्यन्त समृद्ध है।

राजस्थानी लोक साहित्य की तीसरी सशक्त विधा है 'लोक गाथा' इसके लिए 'पवाड़ा) शब्द का भी प्रयोग हुआ है। पाबूजी के पवाड़े, देवजी के पवाड़े, रामदेवजी के पवाड़ेख निहालदे के पवाड़े आदि प्रसिद्ध पवाड़े हैं। ये काव्यात्मक, शैल्पिक, वैविध्य एवं सामाजिक-सांस्कृतिक निरूपण की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है। वीररस, श्रृंगाररास, हास्यारस, करूणारस औश्र निर्वेदानिक भावों का सफल चित्रण इनमें सहज सुलभ है।

लोक नाट्यों के तीन मुख्य प्रकार मिलते हैं ख्याल, स्वांग व लीलायें। ख्याल क्षेत्रीय रंगत लिये होते हैं। इसमें पौराणिक, लौकिक, सामाजिक एवं समसामयिक पक्षों द्वारा शिक्षा परक बातों आती हैं। कहावत का अर्थ हैं ऐसी कही हुई बात जो समाज के अधिकांश व्यक्ति अनुभव करते हैं। धर्म, दर्शन, नीति, पुराण, इतिहास, ज्योतिष, सामाजिक रीति-रिवाज, कृषि, राजनीति और कहावतों में समाहित है। पहेली के लिए अड़ी, पाली, हीयाली आदि शब्द प्रचलित है। पहेली में बुद्धि चातुर्य और गूढ़ार्थ ये दो प्रमुख तत्व होते हैं।

संक्षेप में राजस्थानी लोक साहित्य में ने केवल राजस्थान का लोकजीवन प्रतिबिम्बित है, अपितु इस प्रदेश का भूगोल, इतिहास, सामाजिक रीति-रिवाज, धर्म, देवी-देवता, लोक आस्थायें, अन्धविश्वास सभी का यह एक निर्मल दर्पण है।

राजस्थानी लोक साहित्य की सामान्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

1. लोक साहित्य में लोकाभिव्यक्ति होती हैं जिसमें नैतिक मूल्यों, रीति-रिवाजों, विश्वासों आदि का समायोजन होता है।
2. लोक साहित्य लिखित न होकर प्राय: मौखिक रूप से विकसित होता है।
3. लोक साहित्य की शैली क्लिष्ट न होकर सरल व अलंकरण रहित होती है।
4. लोक साहित्य का साहित्यकार एवं उसका रचनाकार प्राय: ज्ञात नहीं होता है।
5. लोक साहित्य में लोक मानस की संस्कृति झलकती है।

राजस्थान की भाषा एवं बोलियों के विकास में डॉ. एल. पी. टेसीटोरी के योगदान का वर्णन कीजिए।

उत्तर : सुप्रसिद्ध भाषाशास्त्री डॉ. ग्रियर्सन डॉ. एल.पी.टैसीटोरी की विद्वता से काफी प्रभावित थे। डॉ. ग्रियर्सन एशियाटिक सोसाइटी ऑफ कलकत्ता के अधीन राजपूताना के ऐतिहासिक सर्वेक्षण का कार्य टैसीटोरी को सौंपा। टैसीटोरी अपने राजस्थानी साहित्यिक सर्वेक्षण को गति देने के लिए सर्वप्रथम जोधपुर आए। यहाँ रामकरण ओसाफ ने राजस्थानी ग्रंथों के संकलन में टैसीटोरी की बहुत सहायता की। डॉ. टैसीटोरी इसके बाद बीकानेर पहुंचे।

इटली निवासी डॉ. एल.पी. टेसीटोरी की कार्यस्थली बीकानेर रही। उनकी मृत्यु (1919) भी बीकानेर में ही हुई जहाँ उनकी कब्र बनी हुई हैं। बीकानेर महाराजा गंगासिंह ने उन्हें **''राजस्थान के चारण साहित्य''** के सर्वेक्षण एवं संग्रह का कायर्स सौंपा था। डॉ. टैसीटोरी ने 1914 से 1916 तक **'इण्डियन एन्टीक्वेरी'** नामक पत्रिका में माना की प्राचीन राजस्थानी और गुजराती एक ही भाषा थी। डॉ. टैसीटोरी ने चारणी और ऐतिहासिक हस्तलिखित ग्रंथों की एक विवरणात्मक सूची तैयारी की। इसी दौरान टैसीटोरी की मुलाकात की मुलाकात बीकानेर के जैन आचार्य विजय धर्मसूरि से हुई जिनसे उन्होंने अनेक धर्मग्रंथों का अध्ययन किया। इसी समय उन्होंने अनेक राजस्थानी ग्रंथों का इटेलियन में अनुवाद भी किया। उन्होंने अपना कार्य पूरा कर दो ग्रंथ लिखों (प्रथम) राजस्थानी चारण साहित्य एवं ऐतिहासिक सर्वे तथा (द्वितीय) पश्चिमी राजस्थानी का व्याकरण।

टैसीटोरी की प्रसिद्ध पुस्तक **'ए डिस्कीप्टिव केटलॉग ऑफ द बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल क्रोनिकल्स'** है। इन्होंने रामचरित मानस, रामायण एवं महाभारत सहित कई भारतीय ग्रंथों का इटालियन भाषा में अनुवाद किया। बेलि क्रिसन रूक्मणी री और राव जैतसी रो छन्द डिंगल भाषा के इन दोनों ग्रंथों का सम्पादन किया। बीकानेर का प्रसिद्ध दर्शनीय म्यूजियम की स्थापना भी टैसीटोरी ने की।

सरस्वती और दृषद्वती की घाटी की हड़प्पा पूर्व कालीबंगा सभ्यता का खो कार्य भी सर्वप्रथम इन्होंने किया। इसके अलावा रंगमहल, बडोपल, रतनगढ़ आदि पुरातात्विक स्थलों की खोज की। डॉ. टैसीटोरी के रग-रग में राजस्थान एवं राजस्थानी के प्रति प्रेम भरा हुआ था। उन्होंने डिंगल साहित्य (चारण साहित्य) की अमूल्य सेवा की।

राजस्थान की भाषा एवं बोलियों के विकास में जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन के योगदान का वर्णन कीजिए

उत्तर : जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन प्रसिद्ध अंग्रेज भारतीय भाषाविद् थे। जो ऐशियाटिक सोसाइटी ऑफ कलकत्ता से सम्बद्ध थे। इन्होंने 1912 ई. में Linguistic Survey of India नाम का ग्रंथ लिखा जिसमें भारतीय भाषा का विशेषकर राजस्थानी भाषाओं का विस्तृत सर्वेक्षण किया गया ह। ग्रियर्सन ने Modern Vernacular Literature of Nortbern India नामक ग्रंथ भी लिखा। इन्होंने अपने Linguistic Survey of India में राजस्थानी का स्वतंत्र भाषा के रूप में वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। ग्रियर्सन को राजस्थान की बोलियों के वर्गीकरण एवं इन्हें प्रकाश में लाने का श्रेय प्राप्त है।

जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने राजस्थानी बोलियों का सर्वप्रथम उल्लेख 1907-08 ई. में अपने ग्रंथ भारतीय भाषा विषयक कोश Linguistic Survey of India में किया। ग्रियर्सन ने लिखा है 'राजस्थानी का शाब्दिक अर्थ है राजपूतों के देश राजस्थान या रजवाड़े की भाषा। ग्रियर्सन ने लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया की नौवीं जिल्द के दूसरे खण्ड में राजस्थानी बोलियों के पारस्परिक संयोग व सम्बंधों को स्पष्ट किया। ग्रियर्सन ने राजस्थानी बोलियों की पांच उपशाखाएं बताई हैं -

1. **पश्चिमी राजस्थानी (मारवाड़ी) :** पश्चिमी राजस्थानी या मारवाडी भाषा को डॉ. ग्रियर्सन ने 4 भागों में विभाजित किया जो इस प्रकार हैं - (1) पूर्वी मारवाडी-मारवाड़ी, मेवाड़ी, ढारकी आदि। (2) उत्तरी मारवाड़ी-बीकानेर, बागड़ी, शेखावटी (3) पश्चिमी मारवाड़ी-थली और थटकी, (4) दक्षिणी मारवाड़ी-खेराड़ी, गोड़वाड़ी, सिरोही, गुजराती, देवड़ावाड़ी आदि बोलियों में विभाजित किया।
2. **उत्तर-पूर्वी राजस्थानी :** ग्रियर्सन उत्तर पूर्वी राजस्थानी को पुन: दो भागों में बांटा जो इस प्रकार हैं : (1) मेवाती-कठेर मेवाती, मयाना मेवाती, (2) अहीरवाटी।

3. **मध्यपूर्वी राजस्थानी :** इसे दो भागों में विभाजित किया : (1) ढूंढाड़ी-तोरावटी, खड़ी, जैपूरी, राजावाटी, अजमेरी, किशनगढ़ी (2) हाड़ौती -गुर्जरवाड़ी।
4. **दक्षिण पूर्वी राजस्थानी :** इसे तीन भागों में विभाजित किया : (1) मालवी, (2) रांगड़ी (3) बागड़ी -सौंथवाड़ी।
5. **दक्षिणी राजस्थानी :** इसमें नीमाड़ी व भीली को शामिल किया है। इस पर गुजराती एवं खनदेशी का प्रभाव है।

राजस्थान में धार्मिक मान्यताऐं एवं सम्प्रदाय तथा प्रमुख संत एवं उनके पंथों का वर्णन कीजिए

उत्तर : भारत की धार्मिक परम्पराऐं वैदिक संस्कृति, अवतारवाद, भक्ति आंदोलन, कवियों एवं संतों के उपदेशों से प्रभावित रही जिसके फलस्वरूप राजस्थान में विभिन्न धार्मिक मान्यताओं एवं सम्प्रदायों का विकास हुआ जो निम्नलिखित हैं -

शैव धर्म एवं उसके सम्प्रदाय : शिव से सम्बन्धित धर्म को शैव धर्म कहा गया जिसकी निरन्तरता यहाँ सिंधुघाटी सभ्यता से रही हैं। 12वीं सदी में इसके अनेक सम्प्रदाय विकसित हुए जिनमें से लुकलीश द्वारा प्रवृत्तित पाशुपत सम्प्रदाय, भैंरव का कापालिक सम्प्रदाय तथा नाथ पंथ, खाकी, नागा, सिद्ध, निरंजनी आदि प्रमुख हैं। इस मत के अनेक पंथ और कंथ विकसित हुए जो आज जगह-जगह दिखाई भी देते हैं। इनके प्रमुख संतों में लुकलीश, हरित, ऋषि जसनाथजी, गुरू गोरखनाथ जी, मछन्दर नाथ आदि प्रमुख संत थे।

वैष्ण धर्म एवं उसके सम्प्रदाय : विष्णु एवं उसके अवतारों को मानने वाले वैष्णव धर्मावलम्बियों के प्रमाण यहाँ दूसरी सदी के घोसुण्डी अभिलेख से प्रमाणित होते हैं। 15-16वीं सदी में इस धर्म के वल्लभ-सम्प्रदाय निम्बाक्र सम्प्रदाय, गौड़ीय सम्प्रदाय एवं रामावत सम्प्रदाय की सगुण भक्ति परम्परा का यहाँ विकास हुआ। इन सम्प्रदायों ने श्रीकृष्ण एवं राम को आराध्य देव मानकर पूजा की जाने लगी। इनके प्रमुख संतों में संत मीराबाई, कृष्ण पयहारी, परशुराम निम्बार्की आदि प्रमुख संत थे।

शाक्त धर्म : शक्ति देवी की पूजा में विश्वास करने वाले शाक्त कहलाये। यहाँ प्राचीन काल से देवी सम्प्रदाय की मान्यता रही है। पूर्व मध्यकाल में यौद्धा जातियों ने शक्ति को आराध्य मानकर अपनी कुल देवी का दर्जा दिया जो लोक देवी के रूप में भी पूजित एवं श्रद्धा की पात्र रही। करणीमाता, नागणेची माता, जीणमाता आदि आज भी जनमानस की लोकदेवी है।

जैन धर्म : राजस्थान के दक्षिण-पश्चिमी अंचल में जैन धर्म काफी फैला तथा इसके अनेक मंदिर बनाए गए। इसमें श्वेताम्बर, दिगम्बर, तेरापंथी आदि सम्प्रदाय विकसित हुए। यह अपनी अहिंसा एवं कर्म सिद्धान्त के लिए जाना जाता है।

इस्लाम धर्म : राजस्थान में 12वीं सदी में इस्लाम का प्रवेश हुआ जिसके एकेश्वरवाद एवं सूफी संतों के नैतिक आचरणों से जनता प्रभावित हुई। आज यह राजस्थान का दूसरा बड़ा धर्म है। ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेर हाजिब शक्कर बादशाह झुंझुनूं, फखरूद्दीन वीर गलियाकाट, संत हमीमुद्दीन नागौरी आदि प्रसिद्ध सूफी संत हुए।

प्रकृति पूजा की मान्यता : याज्ञिक कर्मकाण्डों की बजाय यहां के निवासियों की यक्ष-यक्षिणी, पशु, नाग, वृक्ष, जलाशय, मछली आदि की पूजा अर्चना में निष्ठा एवं मान्यता देखने को मिलती है।

प्रमुख संत एवं उनके पंथ : इसमें निर्गुण परम्परा से रामस्नेही सम्प्रदाय व उसके संत, जाम्बोजी, जसनाथजी, दादूजी, चरणदासजी, लालदासजी आदि का एवं उनके सम्प्रदायों का संक्षिप्त वर्णन करना है।

अशोक का धम्म

यद्यपि अशोक का व्यक्तिगत धर्म बौद्ध धर्म था, परन्तु उसने अपनी प्रजा की नैतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिए कुछ नैतिक सिद्धान्तों का प्रसार किया, जिन्हें सामूहिक रूप से 'अशोक का धम्म' कहा जाता है। अपनी प्रजा के नैतिक उत्थान के लिए अशोक ने जिन आचारों की संहिता प्रस्तुत की, उसे ही उसके अभिलेखों मे 'धम्म' कहा गया है। अशोक अपनी प्रजा के लौकिक जीवन को ही नही, अपितु पारलौकिक जीवन को भी सुधारना चाहता था। अतः इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने 'धम्म' की स्थापना की

अशोक के धम्म की विशेषतायें

अशोक के धम्म का उद्देश्य बाहरी रूप से मनुष्य के आचरण को पवित्र बनाना और आन्तरिक रूप से उसकी आत्मा को शुद्ध करना था। अशोक के धार्मिक सिद्धान्तों का विश्लेषण करने पर हमें उसके अंतर्गत निम्नलिखित विशेषतायें दृष्टिगत होती है-

1. **सार्वभौमिकता-** उसका धम्म सार्वभौम था। उसमें साम्प्रदायिकता या अन्य किसी प्रकार के संकीर्ण विचारों को जरा भी स्थान प्राप्त नही था। उसके ये नियम सभी धर्मो को समान रूप से मान्य थे। वह समस्त विश्व को एक कुटुम्ब मानता था और सम्पूर्ण मानव जाति की भलाई के लिए प्रयत्नशील रहता था।
2. **सभी धर्मो का सार-** उसके धम्म में केवल सभी धर्मो के सार पर जोर दिया गया था। उसे बाहरी आडम्बर, थोथे क्रिया-कलापों तथा दार्शनिक सिद्धान्तो के जाल से दूर रखने का प्रयास किया था।
3. **नैतिकता पर बल-** अशोक का धम्म पूर्णतया शुद्ध नैतिक धर्म था। इसमें व्यक्ति के शुद्ध आचरण पर विशेष जोर दिया गया था। इसका एकमात्र संबंध मनुष्यों के आचरण से था।
4. **धार्मिक सहिष्णुता-** यह धम्म पूर्णतया उदार था। अशोक के धम्म में इस बात पर बल दिया गया है कि सभी धर्मो का आदर करना चाहिए तथा अन्य धर्मो की निन्दा नही करनी चाहिए।
5. **अहिंसा-** अशोक ने अहिंसा के सिद्धान्त के पालन पर अत्यधिक बल दिया। उसने पशु-पक्षियों के वध पर प्रतिबन्ध लगा दिया और हिंसात्मक यज्ञ बन्द करवा दिया।
6. **धार्मिक पाखण्डों और आडम्बरों का अभाव-** अशोक के धम्म मे कर्मकाण्डों, धार्मिक पाखण्डों तथा आडम्बरों का अभाव था। उसने जन्म, मृत्यु, विवाह आदि के अवसरों पर धार्मिक अनुष्ठान किये जाने की निन्दा की तथा धर्म-मंगल अर्थात् सच्चे रीति-रिवाजों पर बल दिया।
7. **व्यावहारिकता-** अशोक का धम्म एक सैद्धान्तिक कल्पना या आदर्श मात्र नही था, वह एक व्यावहारिक सत्य था जिसे अशोक ने स्वयं अपने जीवन मे क्रियान्वित किया था।

भाब्रू शिलालेख

यह शिलालेख जयपुर राज्य में था। इस लेख मे अशोक के बौद्ध धर्मावलम्बी होने का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। इस लेख मे अशोक ने बौद्ध धर्म तथा संघ के प्रति अपनी भक्ति प्रकट की है। इसमें बौद्ध ग्रन्थों के कुछ उदाहरण भी दिये है तथा भिक्षुओं व उपासकों दोनों से ही कहा गया है कि वे इनका पाठ तथा मनन करें।

त्रिरत्न

जैन धर्म के अनुसार कर्म बन्धन से मुक्त होने और निर्वाण प्राप्त करने के लिए त्रिरत्नों का पालन करना चाहिए। त्रिरत्न निम्नलिखित है-

- **सम्यक् दर्शन-** सम्यक् दर्शन का अर्थ है- यथार्थ ज्ञान के प्रति श्रद्धा। जैन धर्म के अनुसार 'सत्' मे विश्वास रखना ही सम्यक् श्रद्धा है। जैन तीर्थकरों के उपदेशों मे जो ज्ञान निहित है, उसमे पूर्ण श्रद्ध होनी चाहिए। श्रद्धा पूर्णतया युक्तिसंगत होनी चाहिए।
- **सम्यक् ज्ञान-** सत् और असत् का भेद समझ लेना ही सम्यक् ज्ञान है। दूसरे शब्दों मे जीव और अजीव के वास्तविक स्वरूप का पूर्ण ज्ञान ही सम्यक् ज्ञान है।
- **सम्यक् चरित्र-** जैन धर्म के अनुसार मनुष्य का समस्त इन्द्रिय-विषयों से दूर रहना सम दुःख-सुख होना ही आचरण है और इसी को सम्यक् चरित्र कहते है।

चार आर्य सत्य

महात्मा बुद्ध ने चार आर्य सत्य प्रतिपादित किये, जो सब स्थानों पर और सभी कार्यो मे लागू होते थे। ये सत्य या सिद्धांत महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं के आधार है और 'आर्यसत्य चतुष्ट्य' कहलाते है। ये निम्नलिखित है-

- **दु:ख ही जीवन का सत्य है-** यह संसार दु:खमय है। दु:ख अनेक प्रकार के है- वृद्धावस्था, प्रिय का वियोग, रोग, मृत्यु, इच्छाओं का पूरा न होना आदि। सांसारिक मनुष्य इन दु:खों से कभी नही बच सकता है। यह संसार दु:खों, कष्टों और शोकों से परिपूर्ण है।
- **दु:खों का कारण तृष्णा-** दूसरा आर्य सत्य है कि दु:खों और कष्टों की जननी तृष्णा है। तृष्णा के कारण ही अहंकार, कलह, राग-द्वेष, मोह-ममता आदि उत्पन्न होते है।
- **दु:खों का अन्त तृष्णा के नाश से-** दु:खों का कारण तृष्णा है, अत: दु:खों का अन्त तभी सम्भव है जबकि तृष्णा की समाप्ति हो जाए। तृष्णा के नाश से ही मनुष्य दु:खों से छुटकारा पाकर निर्वाण प्राप्त कर सकता है।
- **अष्टांगिक मार्ग द्वारा तृष्णा का नाश-** तृष्णा के नाश और निर्वाण प्राप्ति के लिए गौतम बुद्ध ने अष्टांगिक मार्ग प्रतिपादित किया। इसे माध्यम मार्ग भी कहते हैं।

मुगलकालीन कला, स्थापत्य

कला एवं स्थापत्य (Art and Architecture)

मुगलकाल में भवन-निर्माण, चित्रकारी, नृत्य-संगीत एवं अन्य विविध कलाओं का भी विकास हुआ। सर्वाधिक प्रगति स्थापत्यकला के क्षेत्र में हुई। शाही संरक्षण एवं सामंती प्रश्रय तथा मुगलकालीन आर्थिक समृद्धि ने विभिन्न कलाओं के विकास को प्रभावित किया। इस समय हिंदू-मुस्लिम एवं ईरानी कला शैलियों के प्रभाव से मुगल-शैली का विकास हुआ।

चित्रकला

मुगलकाल मे चित्रकला की अत्यधिक प्रगति हुई। इस काल मे नए दृश्यों एवं विषयों पर चित्र बनाए गए तथा नए रंगों एवं आकारों का प्रयोग आरंभ किया गया। ''मुगलों ने चित्रकला की ऐसी जीवंत परंपरा की नींव डाली, जो मुगल साम्राज्य के पतन के बाद भी देश के विभिन्न भागों में जीवित रही।'' यद्यपि बाबर को चित्रकला मे रूचि थी, परंतु समयाभाव के कारण वह इस पर ध्यान नही दे सका। हुमांयू ईरान से अपने साथ दो कुशल चित्रकरों- मीर सैय्यद अली तथा ख्वाजा **अब्दुस्समद** को अपने साथ भारत लाया। इनके सहयोग से अकबर ने चित्रकला को ''एक राजसी कारखाने'' के रूप में गठित किया। अकबर ने अपने दरबार से अनेक अच्छे चित्रकरों को आमंत्रित किया। ऐसे चित्रकारों से प्रमुख जसवंत तथा दसावन थे। इस चित्रकरों द्वारा अकबर ने फारसी कहानियों, महाभारत, अकबरनामा तथा अन्य महत्वपूर्ण ग्रंथों को चित्रित करवाया। फलस्वरूप चित्रकला पर ईरानी प्रभाव कम हुआ।

भारतीय दृश्यों एवं विषयों पर अधिक चित्र बनने लगे। चित्रों मे फिरोजी एवं लाल रंगों का प्रचलन बढ़ गया। इसके साथ-साथ ''ईरानी शैली के सपाट प्रभाव का स्थान भारतीय शैली के वृत्ताकार प्रभाव ने ले लिया और इससे चित्रों मे त्रिविमीय प्रभाव आ गया।'' पुर्तगाली पादरियों के प्रयास से अकबर के राजदरबार में यूरोपीय चित्रकला का भी आरंभ हुआ। मुगल चित्रकला जहागीर के समय मे अपने विकास की चरम सीमा पर पहुंच गई। जहांगीर चित्रकला का अनोखा पारखी था। एक ही चित्र मे विभिन्न कलाकारों के कामों को वह स्पष्ट रूप से अंतर कर सकता था। जहांगीर के समय का सबसे बड़ा विख्यात चित्रकार मंसूर था। जहांगीर के समय में शिकार, युद्ध एवं राजदरबार के दृश्यों के अतिरिक्त मनुष्य एवं पशुओं के भी चित्र बनाए गए। जहांगीर के बाद चित्रकला मे गिरावट आ गई। इसका मुख्य कारण शाहजहां की स्थापत्यकला मे अधिक रूचि एवं औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता थी। फलत: मुगल दरबार के चित्रकार विभिन्न राजघरानें की दरबार मे चले गए। इस प्रकार शाही मुगल चित्रकला के स्थान पर अब क्षेत्रीय चित्रकला का विकास होने लगा। राजस्थान और पंजाब की पहाड़ियों मे कला की विशिष्ट शैलियों का उदय हुआ। राजस्थानी शैली जैन एवं मुगल कला का सम्मिश्रण थी। इन दो शैलियों मे धार्मिक विषयों के अतिरिक्त प्राकृतिक दृश्यों एवं विभिन्न रंगों पर आधृत चित्र बनाए गए।

संगीतकला

चित्रकला के अतिरिक्त संगीतकला के क्षेत्र में भी मुगलकालीन प्रगति सराहनीय है। मुगलकाल मे संगीत का विकास मुगल बादशाहों और अन्य राजाओं, सामंतों के संरक्षण एवं प्रोत्साहन देने से हुआ। औरंगजेब के अतिरिक्त सभी बादशाह संगीत मे गहरी दिलचस्पी लेते थे। बाबर और हुमायूँ दोनो ही संगीतप्रिय थे। हुमायूँ ने मांडू से बच्चा नामक संगीतज्ञ को बुलाकर अपने दरबार मे रखा। अकबर के समय मे संगीत का सर्वाधिक विकास हुआ। उसके दरबार मे ख्यातिप्राप्त अनेक हिंदू-मुस्लिम संगीतज्ञ थे। इन सभी संगीतज्ञों में अग्रणी तानसेन थे। तानसेन को अकबर ने ग्वालियर से बुलाकर अपने दरबार मे रखा। तानसेन ने अनेक नए रागों का प्रचलन आरंभ किया। अकबर ने समय के अन्य प्रमुख संगीतकारों मे अब्दुर्रहीम खानखाना का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अकबर के समय मे मालवा संगीत का एक विख्यात केन्द्र था। वहां के शासक बाजबहादुर और रानी रूपमती नृत्य-संगीत में निपुण थे। जहांगीर के समय में खयाल और शाहजहां के समय में ध्रुपद गायन विख्यात हुआ। शाहजहां के समय का विख्यात गायक जगन्नाथा था। औरंगजेब ने संगीत पर प्रतिबंध लगा दिया, फिर भी वाद्य संगीत पर कोई रोक नही लगाई जा सकी। वह स्वयं अच्छी वीणा बजाता था। हरम की रानियों एवं सरदारों ने संगीत को बनाए रखा। इसलिए भारतीय शास्त्रीय संगीत पर फारसी मे सबसे अधिक पुस्तकें औरंगजेब के समय ही लिखी गई। उत्तर-मुगलकालीन बादशाहों मे संगीत को सबसे अधिक प्रश्रय मुहम्मदशाह 'रंगीला' ने दिया। राजदरबारों के अतिरिक्त भक्त संतों एवं कवियों ने भी संगीत के विकास में योगदान दिया।

अन्य विविध कलाएं

चित्रकला एवं संगीतकला के अतिरिक्त मुगलकाल मे अन्य विविध कलाओं का भी विकास हुआ। संगीत की सहायक कला के रूप मे नृत्यकला का विकास हुआ। राजदरबारों एवं सामंतों के घरों मे सुंदर और कुशल नृत्यांगनाएं रहती थी। वेश्याओं ने भी नृत्यकला को बढ़ावा दिया। औरंगजेब के पश्चात मुगल दरबार नृत्य-संगीत का अखाड़ा बन गया। मुगलकाल मे सुलेख की कला भी विकसित हुई। पुस्तकों की जिल्दों, पन्नों को सुंदर अक्षरों से लिखकर चित्रित कर उन्हे सजाया जाता था। इस समय कशीदाकारी, हाथीदाँत एवं लकड़ी पर नक्काशी का काम, कांच एवं चीनी-मिट्टी से उपयोगी और सजावट के सामान बनाने की कला, आभूषण, कालीन एवं गलीचे बनाने की कला भी विकसित हुई।

स्थापत्यकला

मुगलों के अधीन सबसे अधिक प्रगति वास्तुकला अथवा स्थापत्य कला के क्षेत्र मे हुई। मुगल शासकों ने भव्य महलों, किलों, द्वारों, मस्जिदों एवं बागों का बडें पैमाने पर निर्माण करवा कर राजधानी एवं अन्य प्रमुख नगरों को सजा दिया। मुगलकाल मे इस्लामी एवं राजपूत शैलियों के मिश्रण से मुगल स्थापत्य कला का विकास हुआ।

बाबर ने आगरा एवं लाहौर मे अनेक बाग लगवाए। उसने पानीपत की काबुली मस्जिद एवं संभल की जामा मस्जिद बनवाई। 1528 ई. मे बाबर के नाम पर उसके सेनापति मीर बकी ने अयोध्या में बाबरी मस्जिद का निर्माण करवाया। हुमायूँ ईरान से अपने साथ कुर्द कारीगरों को भी भारत लाया, जिन्होने स्थापत्यकला के विकास मे योगदान दिया। हुमायूँ ने दिल्ली मे दीन-पनाह महल और आगरा तथा फतेहबाद मे कुछ मस्जिदें बनवाई।

हुमायूँ के समय मे ही शेरशाह ने पुराना किला (दिल्ली) की मरम्मत करवाई एवं सासाराम मे अपना मकबरा बनवाया, जो हिंदू-मुसलमानी कला का सर्वोत्कृष्ट नमूना माना जाता है।

अकबर के पास पर्याप्त समय एवं धन था। इसलिए, उसके समय में स्थापत्य कला का तेजी से विकास हुआ। अकबर ने अपने भवनों मे लाल पत्थरों का प्रयोग बड़े पैमाने पर आरंभ किया। उसने अनेक दुर्गो, महलों, बुर्जो, मस्जिदों, मकबरों, सरायों का निर्माण किया। आगरा का किला अकबर के समय बना। इसमें अनेक द्वार एवं कक्ष थे। उसने आगरा के निकट फतेहपुर सीकरी मे किलानुमा दुर्ग का निर्माण कर इसे सुंदर भवनों से सजा दिया। इस किला के अंदर मुस्लिम, गुजराती, बंगाली और राजपूत शैलियों के अनेक महल बनवाए गए। यहां के

भवनों में प्रमुख है- बीरबरल का महल, पंचमहल जोधाबाई का महल, इबादतखाना इत्यादि। यहां के भवनों को सुंदर नक्काशीदार, स्तंभों, झरोखों एवं छतरियों से सजाया गया। किले के अंदर एक कृत्रिम झील भी बनाई गई। संगमरमर की सहायता से यहां शेख सलीम चिश्ती का मकबरा बनवाया गया। सिकरी मे ही अकबर ने एक भव्य मस्जिद एवं बुलंद दरवाजा का निर्माण करवाया। यह दरवाजा विश्व का सबसे बडा प्रवेश द्वारा माना जाता है। यह एक विशाल चबूतरे पर स्थित है। चबूतरे पर चढ़ने के लिए 42 सीढ़ियां बनाई गई। इस दरवाजे की ऊंचाई (जमीन से) करीब 176 फीट है। इनके अतिरिक्त अकबर ने दिल्ली में हुमायूँ का मकबरा बनवाया, सिकंदराबाद मे अपना मकबरा बनवाना आरंभ किया, तो पूरा नही हो सका तथा आगरा, लाहौर, इलाहाबाद एवं अजमेर मे दुर्ग बनवाए। फतेहपुर सिकरी के भवनों में ईरानी स्थापात्यकला का प्रभाव भी दिखाई देता है।

जहांगीर ने यद्यपि वास्तुकला से अधिक रूचि संगीतकला में दिखाई तथापि उसके समय में भी कुछ सुंदर भवन बने। जहांगीर के समय से भवनों में संगमरमर का प्रयोग अधिकता से होने लगा। संगमरमर पर कीमती पत्थरों से नक्काशी भी गई। जहांगीर ने सिकंदरा-स्थित अकबर के मकबरे को पूरा किया। उसने काश्मीर मे निशात बाग और शालीमार बाग बनावाए। लाहौर मे भी लागू बनवाए गए। नूरजहां ने अपने पिता एतमादुद्दौला का मकबरा, जहांगीर का मकबरा एवं खुजरो बाग का निर्माण करवाया।

मुगल स्थापत्य का चरमोत्कर्ष शाहजहां के शासनकाल मे हुआ। शाहजहां द्वारा निर्मित भवन अकबर के भवनों की तरह भव्य तो नही है, परंतु उनमे सुंदरता अधिक है। शाहजहां के समय की सबसे सुंदर इमारत ताजमहल है। यह विश्व की आर्श्यजनक वस्तुओं में एक मानी जाती है। इसकी मुख्य विशेषता इसका विशाल संगमरमर का गुंबद तथा मुख्य भवन के चबुतरे के किनारों पर खड़ी चार मीनारे है। ताजमहल के अंदर दीवारों को सुंदर पच्चीकारी एवं बहुमूल्य रत्नों से सजाया गया। ताजमहल के निकट एक भव्य बाग भी लगवाया गया, जिसमें फव्वारें बने हुए थे। शाहजहां ने दिल्ली का लाल किला भी बनवाया। यह लाल पत्थर से बना हुआ है। इसमे कई भव्य द्वारकक्ष है। दीवान-ए-आम और दीवान-ए-खास अपनी भव्यता और सुंदरता के लिए विख्यात है। शाहजहां के समय में मस्जिद निर्माण कला भी अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गई। उसके द्वारा बनवाए गए मस्जिदों मे सबसे अधिक भव्य दिल्ली की जामा मस्जिद है। यह भी लाल पत्थरों से निर्मित है। उसने आगरा किले में संगमरमर से मोती मस्जिद का भी निर्माण किया। जामा मस्जिद अपने विशाल द्वार, ऊंची, मीनारों एवं गुंबदों के कारण विख्यात है।

औरंगजेब के समय में शाही स्थापत्यकला की प्रगति धीमी पड़ गई। औरंगजेब के समय मे दिल्ली मे लाल किला में मोती मस्जिद एवं लाहौर मे एक मस्जिद का निर्माण हुआ। औरंगजेब के उत्तराधिकारियों के समय मे दुर्बल राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिति ने स्थापत्यकला के विकास को अवरूद्ध कर दिया। शाही कला का स्थान अब प्रांतीय कला ने ले लिया। अवध और हैदराबाद मे प्रांतीय कला का विकास हुआ। मुगल स्थापत्यकला ने प्रांतीय एवं स्थानीय कला पर विशेष प्रभाव डाला। मुगलकाल में ही राजपूताना एवं दक्षिण भारत में भी कुछ भव्य भवनों का निर्माण हुआ। इसी समय ग्वालियर का मानमंदिर, वृंदावन का गोविंददेव का मंदिर, जयपुर का हवामहल, बीजापुर का गोलगुंबज और अमृतसर का स्वर्णमंदिर बना। स्वर्णमंदिर भी गुंबज तथा मेहराब के सिद्धांत पर बना था और इसमें मुगल वास्तुकला की परंपरा की अनेक विशेषताओं का उपयोग किया गया।

यात्री के रूप मे इब्नबतूता- 1304-1374

मध्यकालीन भारतीय इतिहास के विषय में हमें जानकारी उस समय के दरबारी इतिहासकारों एवं विदेशी यात्रियों के वर्णन से ही प्राप्त होती है। इसी क्रम में मध्यकालीन स्त्रोत के रूप में इब्नबतूता का महत्वपूर्ण स्थान हो जाता है।

वस्तुतः इब्नबतूता अफ्रीका महाद्वीप के मोरक्कों का यात्री था, जो मोहम्मद बिन तुगलक के दरबार में दिल्ली आया था। तुगलक ने उसकी विद्वता को देखते हुए उसे दिल्ली का काजी नियुक्त कर दिया और फिर 1342 ई. में उसे अपना दूत बनाकर चीन के दरबार में भेजा। आगे चलकर इब्नबतूता ने तुगलक के व्यक्तित्व उसकी नीतियों एवं शासन के अन्य क्षेत्रों का विस्तार से वर्णन किया।

भारतीय समाज के बारे मे वह लिखता है कि यहां गैर मुस्लिम की संख्या ज्यादा है और इनके रीति-रिवाज भी मध्यएशिया से अलग है। इसी प्रकार आगरा के आस-पास सती प्रथा का आँखों देखा विवरण उसने अपनी पुस्तक 'रेहला' मे किया है। उसने अलाउद्दीन की बाजार नीति की तुलना तुगलक के शासन से की है तथा बताया है कि तुगलक के समय सभी खाद्य पदार्थो के मूल्य तीन गुना तक बढ़ गये थे। इसी प्रकार वह सिंध के लाहौरी बंदरगाह का भी वर्णन करता है जो मध्य एशिया के लिए कए महत्वपूर्ण कड़ी था।

इब्नबतूता गयासुद्दीन की मृत्यु के लिए जौनाखाँ के षडयंत्र का विवरण देता है तथा जौनाखाँ को ''खून की नदियाँ बहाने वाला'' सुल्तान करार दिया। उसने लिखा है कि राजधानी परिवर्तन व कराचिल अभियान जनता को दण्ड देने के लिए किया गया था। उसने 'डाक व्यवस्था' का भी विस्तार से वर्णन किया है, वह लिखता है कि जब सुल्तान दौलताबाद गया तो डाक के माध्यम से ही उसे गंगाजल भेजा जाता था।

जब वह दिल्ली दरबार का दूत बनाकर चीन भेजा जा रहा था तो वह अलीगढ़ मे डाकुओं के द्वारा लूट लिया गया था। इस घटना का भी वर्णन उसने अपनी पुस्तक मे किया है। जब वह चीन के दरबार मे पहुंचा तो वहां का सम्राट अनुपस्थित था तथा इसके पास कोई शाही निशान भी नही था अत दरबार मे इसें सम्मान नही मिला। यही से फिर यह मोरक्कों लौट गया।

यद्यपि इसने सल्तनत के विषय मे काफी कुछ वर्णन किया है फिर भी इसकी पुस्तक में कुछ त्रुटियां है, जैसे वह लिखता है कि कुतुबमीनार की सीढ़िया इतनी चौड़ी थी कि हाथी भी उस पर चढ़ सकता था। इसी प्रकार राजधानी परिवर्तन व मुद्रा के विषय मे दिये गये मत भी उचित नहीं है।

फिर भी इसने अपनी पुस्तक दिल्ली दरबार से दूर जाकर लिखी थी अतः सुल्तन का इस पर कोई दबाव नही था। उसने सभी घटनाओं का ऐसा चित्रण किया है जो सजीव प्रतीत होते है। इसलिए भारत आने वाले यात्रियों मे इब्नबतूता का यात्रा विवरण ''रेहला'' ऐतिहासिक स्त्रोत होने के साथ-साथ सामाजिक व आर्थिक जीवन से संबंधित जानकारी का महत्वपूर्ण स्त्रोत भी माना जाता है।

फाहियान का यात्रा विवरण

प्राचीन भारत के इतिहास बोध के लिए पुरातात्विक साक्ष्यों के साथ ही साहित्यिक साक्ष्यों की उपलब्धता भी हमारे पास मौजूद है। इनमें विदेशी यात्रियों द्वारा दिये गये विवरण हमारी जानकारी के लिए महत्वपूर्ण स्त्रोत सिद्ध होते है। जिस प्रकार मौर्यकाल में मेगस्थनीज ने महत्वपूर्ण विवरण छोड़ा है, उसी प्रकार गुप्तकाल में चीनी यात्री फाहियान ने भी भारत की दशा व दिशा का व्यापक वर्णन छोड़ा है।

फाहियान का जन्म चीन मे हुआ था तथा आरंभिक जीवन से ही बौद्ध धर्म की ओर उसका झुकाव था। चूँकि भारत भी उस समय तक अपने बौद्ध धर्म के लिए प्रसिद्ध था, इसी जिज्ञासावश फाहियान ने भारत वर्ष की यात्रा की। फाहियान 399 ई. स लेकर 414 ई. तक भारत में रहा। यह काल क्रम गुप्तवंश के महान शासक चन्द्रगुप्त II विक्रमादित्य को द्योतित करता है।

फाहियान ने अपने यात्रा विवरण फो-यू-की मे कहीं भी चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के नाम का उल्लेख नहीं किया है लेकिन समकालीन नरेश की प्रशंसा करते हुए लिखता है कि यह राजा ब्राह्मण मतानुयायी एवं दयालु था। इस काल मे प्रजा दुर्भिक्ष अथवा किसी प्रकार की अराजकता का सामना नही करना पड़ा। साथ ही यह भी बताता है कि कानून

कठोर नहीं थे। शारीरिक या मृत्युदण्ड नही दिया जाता था। बल्कि अर्थ दण्ड देकर अपराध मुक्त कर दिया जाता था।

गुप्तकाल की सामाजिक दशा का वर्णन करते हुए फाहियान लिखता है कि यहां के लोग सत्यवादी अहिंसा प्रेमी तथा अतिथि परायण थे। सम्पूर्ण देश में चाण्डालों को छोड़कर कोई भी हिंसा नही करता था, न मदिरापान करता था, न ही लहसुन-प्याज का सेवन करता था। फाहियान मथुरा के वैश्यों की प्रशंसा करते हुए लिखता है कि वे अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति के होने के कारण भिक्षुओं को प्रचुर मात्रा में दान करते थे।

आर्थिक दशा ही उन्नति के विषय मे फाहियान ने लिखा है कि बड़ी वस्तुओ के क्रय मे मुद्राओं का, छोटी वस्तुओ के क्रय हेतु पाटलिपुत्र के बाजार मे कौड़ियों का प्रयोग प्रचलन मे था। वाणिज्य व्यापार काफी उन्नति अवस्था मे था। गुप्तकाल में ''चिनाशंकु'' (विशेषवस्त्र) बहुत लोक प्रिय था। व्यापारिक जहाजों के द्वारा वस्तुओ का आयात-निर्यात होता था।

इसी तरह भारत की धार्मिक दशा का वर्णन करते हुए फाहियान लिखता है कि भारत विभिन्न धार्मिक विश्वासों का स्थल था। मथुरा के श्रमण भिक्षुओं का बहुत आदर करते थे। तथा 'जेतवन बिहार' को दान देने की होड़ लगी रहती थी। इतने दीप जलाये जाते थे कि रात्रि का अंधकार पलायन कर जाता था। उसके अनुसार वैशाख अष्टमी को मूर्तियों का जुलूस निकाला जाता था, जिसमें साधु एवं गृहस्थ सभी सम्मिलित होते थे।

फाहियान तीन वर्षो तक पाटलिपुत्र मे निवास किया था, उसने पाटलिपुत्र के राजप्रसाद को देवताओं द्वारा निर्मित बताया साथ ही अश्मेक द्वारा निर्मित स्तूप व बौद्ध बिहारों का भी जिक्र किया है। इस प्रकार, फाहियान का यात्रा विवरण इतिहास लेखन के लिए महत्वपूर्ण हो जाता है यद्यपि बौद्ध होने के कारण उसने कई तथ्यो को अपने हिसाब से तोड़ा-मरोड़ा है।

सगुण भक्ति

भक्ति आंदोलन मे एक प्रभावशाली धारा के रूप में वैष्णव भक्ति का विकास हुआ तथा समाज में इसकी अभिव्यक्ति दो रूपों मे हुई-रामभक्ति तथा कृष्ण भक्ति। वस्तुत: इस वैष्णव भक्ति का सबसे बड़ा योगदान सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में देखने को मिलता है।

ऐसा माना जाता है कि निर्गुण भक्ति की शुष्कता अनेक मुरझायें हुए मन को सांत्वना नहीं दे पा रही थी। क्योकि इसमें ईश्वर का स्वरूप स्पष्ट नही था। परंतु सगुण भक्ति के रूप में राम भक्ति एवं कृष्ण भक्ति ने लोगों को सांत्वना दी, जिससे समाज मे पुन: समरसता का भाव पैदा हुआ।

17वीं सदी के मध्य तक वैष्णव भक्ति उत्तर भारत मे एक लोक प्रिय आंदोलन का रूप ले चुकी थी। तथा रामानन्द से लेकर मीराबाई, तक उत्तर से दक्षिण एवं पूरब से पश्चिम चारों ओर अनेक संत स्थापित हो गये थे। उदाहरण के लिए बल्लभाचार्य मध्वाचार्य, तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई व चैतन्य इत्यादि। वैष्णव भक्ति ने समकालीन समस्याओं पर दृष्टिपात किया।

उस समय की महत्वपूर्ण समस्या कठोर जाति संरचना थी, जिसने समाज के विकास को अवरूद्ध कर दिया था। यद्यपि यह सही है कि सगुण भक्ति ने वर्ण व्यवस्था को पूर्णत: अस्वीकार नही किया था तथा उसके साथ समझौता बनाये रखा था लेकिन इस वैष्णव भक्ति ने वर्ण व्यवस्था के कसाव को कम करने का प्रयास अवश्य किया था। उदाहरण के लिए तुलसी जैसे परम्परावादी भी राम, केवट व शबरी के प्रसंग के माध्यम से उच्चवर्ग एवं निम्न वर्ग के बीच एक सामाजिक समरसता लाने का प्रयास करते है।

उसी प्रकार बन्दर भालुओं से राम के सम्बंधों को दिखाकर जन सामान्य को प्रतिबिम्बित करने का प्रयास करते है। इसी प्रकार कृष्ण भक्ति मे भी यद्यपि जाति व्यवस्था को अस्वीकार नहीं किया गया लेकिन अनेक जातिगत मर्यादा तथा सामाजिक कुरीतियों का तिरस्कार कर दिया, जिसे कृष्ण-गोपियों के सम्बंधों मे देखा जा सकता है।

उस काल की एक दूसरी प्रमुख समस्या महिलाओं की गिरती हुयी सामाजिक दशा थी। यहां भी वैष्णव भक्ति ने स्पष्ट रूप में विरोध नहीं किया। फिर भी महिलाओं के प्रति प्रचलित दृष्टिकोण मे यथासंभव परिवर्तन लाने का प्रयास किया। यही कारण है कि वैष्णव भक्ति में पुरूषों के साथ महिलाएं भी शामिल होने लगी जिसमें मीराबाई का नाम सर्व प्रमुख है। इसी तरह कृष्ण और गोपियों के सम्बंध के माध्यम से कृष्ण भक्ति मे महिलाओं के सम्बंध मे कुछ सामाजिक नियंत्रणों की भी तिलांजति दी गई है।

वैष्णव भक्ति ने तात्कालिक आर्थिक व्यवस्था पर भी गहरी चोट की। तुलसीदास ने अकाल एवं भुखमरी जैसी समस्याओं को उठाया। उसी प्रकार सूरदास ने भी मथुरा और गोकुल के बीच सम्बंधों मे नगरीय जीवन तथा ग्रामीण जीवन के अन्तर को बताने का प्रयास किया गया। लोकभाषा तथा लोक साहित्य के विकास की दृष्टि से भी वैष्णव भक्ति का महत्वपूर्ण योगदान रहा।

एक तरफ रामभक्ति मे अवधी बोली व भाषा को अपनाया गया तो कृष्णभक्ति मे ब्रजभाषा को स्थान मिला। इसी तरह साहित्य के क्षेत्र मे तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' की रचना अवधी भाषा में की तो ब्रजभाषा मे सूरदास ने सूरसागर जैसे महान ग्रन्थों की रचना की।

संगीत के विकास मे भी वैष्णव भक्ति का महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है। स्वामी हरिदास ने संगीत के विकास मे अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। तो दूसरी तरफ चैतन्य ने मंदिरों मे संकीर्तन की प्रणाली आरम्भ की। यद्यपि ऐसा माना जाता है कि वैष्णवभक्ति का दृष्टिकोण रूढ़िवादी ही बना रहा तथा इस पर ब्राह्मणों का वर्चस्व कायम रहा। यह भक्ति मंदिर व मूर्तिपूजा से सम्बंध रही। इसमें निर्गुण भक्ति की तरह हमें वह प्रगति-शीलता दिखायी नही पड़ती, जहां संतो ने निराकार ब्रह्म के साथ ही सामाजिक समरसता पर भी बल दिया था। फिर भी वैष्णव भक्ति ने समाज को विभिन्न आयामों से परिचित करवाया तथा अपने जाति, धर्म में रहते हुए भी भक्ति को प्रशस्त किया।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र

प्राचीन भारत के इतिहास मे कौटिल्य के अर्थशास्त्र का महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है। यह भारत ही नहीं अपितु विश्व की श्रेष्ठ रचनाओं मे एक मानी जाती है। इसका महत्व इससे भी स्थापित हो जाता है जब इसकी तुलना 'सुकरात' के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पॉलिटिक्स' तथा मैकियावेली के प्रिंस से की जाती है। यद्यपि अर्थशास्त्र की रचना कब और किसके काल में हुई, यह विवाद का विषय है, फिर भी सामान्यत: यह माना जाता है कि चन्द्रगुप्त के प्रधानमंत्री और पुरोहित कौटिल्य की ही यह रचना है।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे राज्य के तत्व, राजा की स्थिति उसके अधिकार, राजत्व सिद्धान्त, युद्ध व शांति गुप्तचर व्यवस्था व न्याय प्रशासन इत्यादि सभी विषयों पर प्रकार पड़ता है। राजनैतिक व्यवस्था के केन्द्र के रूप में राजा की सर्वोच्चता व उसकी सम्पन्नता पर अधिक बल दिया गया है। राजा के लिए इस ग्रन्थ में 'चंक्रवर्ती' की अवधारणा दी गयी है जो साम्राज्यवादी भावना को प्रदर्शित करती है।

यह कल्याणकारी व आदर्श राज्य की संकल्पना दार्शतिक प्लेटों के राजत्व सिद्धांत से बहुत मेल खाती है। कौटिल्य ने लिखा है कि ''प्रजा के सुख में ही राजा का सुख व प्रजा के दु:ख मे ही राजा का दु:ख निहित है। कौटिल्य का मानना है कि राजनीति मे धर्म व नैतिकता का कोई स्थान नहीं है। अत: राजा को अपने राज्य के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सभी प्रकार के साधन अपनाने चाहिए परंतु अपने व्यक्तिगत जीवन में राजा को धर्म व नैतिकता का पालन करना चाहिए।''

कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र मे राज्य के लिए सप्तांग विचारधारा की अवधारणा को व्यक्त किया है। जो 7 तत्वों से मिलकर बना है- राजा, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड और मित्र। इसी प्रकार प्रशासनिक व्यवस्था के अंतर्गत कौटिल्य ने व्यापक नौकरशाही का जिक्र किया है। इसके अंतर्गत 18 तीर्थ एवं 27 अध्यक्ष की चर्चा की गयी है।

इतना ही नहीं मंत्रियों की नियुक्ति से पहले उनके चरित्र की भली-भांति जांच पड़ताल होती थी, जिसे 'उपधा परीक्षण' कहा जाता था।

अर्थशास्त्र में गुप्तचर प्रणाली का भी व्यापक उल्लेख किया है। कौटिल्य के अनुसार विशाल साम्राज्य के विभिन्न मंत्रियों एवं पदाधिकारियों की निगरानी करने हेतु एवं पड़ोसी राज्यों से संबन्धित सभी प्रकार की सूचना उपलब्ध कराने हेतु एक मजबूत गुप्तचर प्रणाली होनी चाहिए। अर्थशास्त्र में गुप्तचर विभाग को ''महामात्यासर्प'' तथा गुप्तचरों को 'गूढ़ पुरूष' की संज्ञा दी गयी है।

इसी प्रकार अर्थशास्त्र मे आर्थिक व्यवस्था व राजस्व प्रशासन के विषय मे भी विस्तृत वर्णन किया गया है। सर्वप्रथम हमें इसी ग्रन्थ मे करारोपण पद्धति के विषय मे सूचना प्राप्त होती है। हमें सूचना प्राप्त होती है कि राज्य 1/6 भाग कर वसूलता था, जिसमें राजकीय भूमि से प्राप्त आय को 'सीता' कहा जाता था।

आर्थिक प्रशासन मे भी जनकल्याण की भावनाओं का ध्यान रखते हुए कौटिल्य का मानना है कि राज्य को जनता से कर वसूलने का तभी तक अधिकार है जब तक वह सेवा करें।

इसी प्रकार, अर्थशास्त्र मे राज्य के विविध आयामों, यथा- उद्योग, सिंचाई इत्यादि का भी विधिवत वर्णन किया गया है। साथ ही 7वें अधिकरण मे विदेश नीति का वर्णन किया गया है।

उपरोक्त तथ्यों के बावजूद भी अर्थशास्त्र की अपनी सीमाएँ बनी रही क्योंकि इसके कालक्रम को लेकर इतिहासकारों के बीच विवाद देखने को मिलता है। दूसरे यह भी माना जाता है कि अर्थशास्त्र मे जिस राज्य का वर्णन है वह एक छोटा राज्य था न कि विस्तृत राज्य। इसी तरह यह ग्रन्थ 'सूत्र शैली' में लिखा गया है तथा इसकी भाषा अत्यन्त गूढ़ है।

इस सबके बावजूद भी कौटिल्य एक महान राजनीतिज्ञ, कूटनीतिज्ञ तथा सम्राट निर्माता था। वह सैद्धान्तिक ज्ञान के अतिरिक्त व्यावहारिक कुशलताओं एवं अनुभवों मे भी पारंगत था। अत: अर्थशास्त्र के रूप में कौटिल्य की यह कृति विश्व की किसी भी राज्यकृति से तुलनीय नहीं है बल्कि किसी भी राज्य दृष्टा की सोच से कही ऊपर है वस्तुत: कौटिल्य एक अर्थ में यथार्थवादी एवं भौतिकवादी चिंतक थे और उन्होंने राज्यशास्त्र को धर्म निरपेक्षता के संदर्भ मे रखना चाहा।

अतिलघुत्तरीय प्रश्न

सांहगौरा शिलालेख -गोरखपुर जिले से प्राप्त साहगौरा अभिलेख की रचना अशोक कालीन प्राकृत भाषा में हुई। यह अभिलेख अकाल के समय किये जाने वाले राहत कार्यो से संबंधित है।

शिलप्पादिकारम् -संगमकालीन महाकाव्य, इलंगोआदिगल द्वारा रचित इसमें कन्नगी और कोवलन की प्रेमगाथा का वर्णन है।

अहदी तथा दाखिली -मुगलकाल में मनसबदारों के सैनिकों मे दो प्रकार के घुड़सवार सैनिक थे- अहदी (जो बादशाह द्वारा नियुक्त किये जाते थे) दाखिली (अंगरक्षक के रूप में कार्य करते थे)।

अष्टप्रधान -शिवाजी ने राज्य के प्रशासन के लिए केन्द्रीय स्तर पर 'अष्ट प्रधान' की व्यवस्था की। इसमें पेशवा, अमात्य, मंत्री, सचिव, सुमंत, सेनापति, पंडितराव व न्यायाधीश शामिल थे।

पोर्टो नोवा का युद्ध -1781 में हैदर अली और अंग्रेजी जनरल आयरकूट के बीच पोर्टोनोवा का युद्ध हुआ जिसमें हैदर अली परास्त हुआ।

हिंद स्वराज -गांधीजी ने 1909 में लिखी अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज' में स्वराज (स्वशासन) की विस्तृत व्याख्या की। गांधीजी ने लिखा कि स्वराज का अर्थ मन के राज्य से है।

बटलर कमेटी -1927 में अंग्रेजों द्वारा स्थापित समिति, जो देशी रियासतों तथा ब्रिटिश इंडिया के आर्थिक-राजनीतिक संबंधों के वैधानिक व्याख्या के लिए गठित की गयी थी। जिसमें देशी रियासतों को पूरी तरह से ब्रिटिश पैरामाऊण्टेसी के अधीन बताया।

राष्ट्रीय आंदोलनो के चरण

- उदारवादी	- 1885 से 1905
- उग्रवादी चरण	- 1905 से 1909
- गांधीवादी चरण	- 1909 से 1947

गदर आंदोलन- 1913 से 1915 के बीच अप्रवासी भारतीय द्वारा भारतीय स्वतंत्रता हेतु चलाया गया आंदोलन।

हड़प्पा सभ्यता

- सिन्धु सभ्यता की नगरीय सभ्यता,
- हड़प्पा सभ्यता के सर्वाधिक स्थल गुजरात में खोजे गए
- हड़प्पा से प्राप्त मोहरो पर सर्वाधिक एक श्रृंगी पशु का अंकन

मुहतसिब

- शिवाजी द्वारा प्रारम्भ की गई प्रणाली
- शिवाजी के समय कुल उपज का 33 प्रतिशत भाग राजस्व के रूप में वसूला जाता था, जो बढ़कर 40 प्रतिशत हो गया।

नसक

- मुगल कालीन लगान व्यवस्था,
- इसमें खड़ी फसल के आधार पर लगान का अनुमान लगाकर फसल कटने पर उसे लिया जाता था,
- यह व्यवस्था मुख्य रूप में बंगाल में प्रचलित थी।

पेशवा

- मराठा साम्राज्य के अष्ट प्रधान में प्रधानमंत्री का पद
- राज्य का प्रशासन एवं अर्थव्यवस्था की देख-रेख करने वाला।

सरदेशमुखी

- मुगल प्रशासनिक अधिकारी,
- शरियत के प्रतिकुल कार्य करने वालों को रोकना
- आम जनता के दुश्चरित्रता से बचाने का कार्य करता था।

राष्ट्रकूट

- दक्षिण भारतीय राजवंश, प्रारम्भ में चालुक्य राजाओ के अधीन एलौरा के प्रसिद्ध कैलाश मंदिर का निर्माण करने वाले।
- कृष्ण प्रथम, अमोघ वर्ष, कृष्णा-II, प्रमुख शासक

लाला लाजपत राय

- महान स्वतंत्रता संग्राम सेनानी
- कांग्रेस के उग्रवादी समूह से संबंधित
- अनहैपी इंडिया के लेखक
- साइमन कमीशन के विरोध के दौरान लाठी प्रहार से देहान्त।

पूना पैक्ट

- महात्मा गांधी और डॉ. अम्बेडकर के बीच समझौता
- साम्प्रदायिक प्रंचाट मे दलितों के लिए प्रांतीय विधान सभा में पृथ्क निर्वाचन प्रणाली को समाप्त कर उनके लिए 71 के बदले 148 स्थान आरक्षित रखे गये।

क्रिप्स मिशन

- 1942 में स्टेफोर्ड क्रिप्स की अध्यक्षता में
- भारत के राजनीतिक गतिरोध दूर करने हेतु

पानीपत का तृतीय युद्ध कब और किसके मध्य हुआ?

-पानीपत का तृतीय युद्ध सन् 1761 ई. में अहमदशाह अब्दाली एवं मराठा शासकों के मध्य हुआ था। इसमें अब्दाली विजिय हुआ एवं मराठों की हार हुई।

'राजतरंगिणी' पर संक्षिप्त जानकारी दीजिये। -'राजतरंगिणी' भारत की प्रथम ऐतिहासिक कल्हण रचना है, जिसमें प्रथमत: समस्त पहलुओं को संतुलित रूप से लिखने का प्रयास किया गया है।

'वैशेषिक दर्शन' क्या है? -'वैशेषिक दर्शन' भारतीय दर्शन की 6 प्रमुख शाखाओं में से एक है। इसे महर्षि कणाद ने प्रतिपादित किया था, जो जगत को परमाणुवाद पर आधारित बताता है।

ब्रह्म समाज की स्थापना किसने की? -ब्रह्म समाज की स्थापना 20 अगस्त,1828 ई. को कलकत्ता में राजा राममोहन राय द्वारा दी गई थी। राजा राममोहन राय की मृत्योपरान्त ब्रह्म समाज का नेतृत्व देवेन्द्रनाथ टैगोर ने संभाला।

बेलूर मठ कहाँ स्थित है?- बेलूर मठ कलकत्ता (पश्चिम बंगाल) से 8 किमी. दूर स्थित है। इसकी स्थापना स्वामी विवेकानन्द द्वारा 1899 ई. की गई थी। वह रामकृष्ण, मिशन का मुख्यालय है।

'मनसबदारी प्रथा' को स्पष्ट कीजिये? -मुगल प्रशासन में प्रचलित 'मनसबदारी प्रथा' सर्वप्रथम अकबर द्वारा 1577 ई. में आरंभ की गई थी। शाही सेना से सम्मिलित होने वाले व्यक्ति को 'मनसब' का पद प्रदान किया जाता था तथा पद धारण करने वाले को 'मनसबदार' कहा जाता था।

'अहमदिया आंदोलन' पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। -वर्ष 1889 में मिर्जा गुलाब अहमद ने गुरूदासपुर (पंजाब) के कादिया नामक स्थान से अहमदिया आंदोलन को मुसलमानों में इस्लाम के सच्चे स्वरूप को प्रचारित करने एवं मुस्लिमों में आधुनिक औद्योगिक एवं तकनीकी प्रगति को धार्मिक मान्यता प्रदान करने के उद्देश्य से प्रारंभ किया गया था।

रामोसी विद्रोह: रामोसी जनजाति उत्तरी सहाद्रि पर्वत रहने वाले लोग थे जो मराठाओं के राज्य में पुलिस के रूप में सेवायें देते थे और बाद ब्रिटिशकाल में अत्यधिक मात्रा के करारोपण के पीड़ित रहे। 1822 से 1829 तक सरदार चित्तर सिंह के नेतृत्व में और 1877 में वासुदेव बलवंत फड़के के नेतृत्व में विद्रोह किया।

पेटीकोट शासन : बैरम खॉं के पत्तन के पश्चात मुगल प्रशासन में अकबर की धाय मॉं- माहम अनगा, जीजी अनगा और अधम खॉं का प्रत्यक्ष हस्तक्षेप होने लगा। इतिहासकारों ने इस को **''पेटीकोट शासन''** की संज्ञा दी है।

डिक्की बर्ड प्लान : भारत की स्वतंत्रता के लिये, जून योजना के पूर्व लॉर्ड माउण्ड बेटन ने डिक्की बर्ड योजना बनाई। योजना में सुझाव ने शिमला में इस योजना को एक भारत में अनेक छोटे-छोटे भारत बनाने की योजना बनाकर खारिज कर दिया।

ब्रहादेय : प्राचीनकाल में ब्राहाणों को धार्मिक कार्यो के बदले अनुदान में दी गई भूमि ब्रहादेय कहलाती थी। (दक्षिण में चोलो व सातवाहनों के शासन काल में एक साथ हजारों ब्राहाणों को भूमि देने के साक्ष्य मिले हैं) इस पर किसी प्रकार का कर देय नहीं होता था।

आनंद कुमारास्वामी : श्री आनंद कैटिश कुमारास्वामी श्रीलंकन तमिल थे। वह भारतीय कला के प्रथम इतिहासकार और दार्शनिक थे। 1920 में उन्होंने राजपूत और मुगल काल में महत्वपूर्ण खोजें की और उन्हें अपनी पुस्तक'' राजपूत पेंटिंग्स'' में प्रकाशित किया।

गांधार कला: ग्रीक शैली से प्रभावित '' भारतीय मूर्तिकला शैली '' अपनी उत्पत्ति से ही उत्तर पश्चिम भारत की शैलियों जैसे : पर्सिया, ग्रीक, रोमन शक और कुषाण आदि के प्रभावों को भी समाहित किये हुये थे। इस कला शैली का विषय बौद्वधर्म की महायान शाखा पर आधारित आकृतियॉं थी। कुषाण शासक कनिष्क के काल में इस कला को विशेष संरक्षण प्राप्त हुआ।

दीवान-ए-बंदगान : फिरोह शाह तुगलक के शासनकाल के दौरान, दासों से संबंधित मामलों की देख-रेख हेतु एक अलग विभाग की स्थापना की गई। इस विभाग का उपयोग शाही खाजाने के खाली हो जाने पर सार्वजनिक निर्माण के कार्य तथा शाही बगानों की देख-रेख हेतु किया गया।

मज्म-उल-बहरीन : इसका अर्थ है '' दो महासागरों का मिलन ' (हिन्दु और मुस्लिम)। मज्म-उल-बहरीन, शहजादा दाराशिकोह की रचना थी। इस पुस्तक (1956) में उन्होंने हिन्दु-मुस्लिम एवम् अन्य धर्मो की एकता हेतु प्रचार किया।

मार्कोपोलो : इटली का यात्री जो चीन के कुबलई खान के दरबार में था, चीन से इटली जाते समय वह (तंजौर के पाण्ड्य राज्यों के) तमिल राज्य में स्थित कोरोमंडल तट पर पहुंचा । उसने अपनी पुस्तक '' द ट्रेवलर'' में इसका वर्णन किया।

हरिहर और बुक्का : दो भ्राता - हरिहर एवम् बुक्का ने किले के पास तुंगभद्रा के दक्षिणी तट प विजयनगर साम्राज्य की नींच रखी। इतिहास में वे '' संगम भ्राता'' के रूप में प्रसिद्व है। हरिहर ने साम्राज्य को संगठित किया और बाद में बुक्काराय ने साम्राज्य का विस्तार किया।

कोणार्क का सूर्य मंदिर ?

कोणार्क का सूर्य मंदिर ओडिशा के पूरी जिले में स्थित है। इसे लाल बलुआ पत्थर और काले ग्रेनाइट पत्थर से 13वींशताब्दी में गंग वंश के शासक नरसिंह देव प्रथम (1238-64) द्वारा बनवाया गया था। अपनी वास्तुकला के लिए प्रसिद्ध इस मंदिर को ''ब्लैक पगोडा'' भी कहा जाता है।

कुतुबमीनार ?

दक्षिणी दिल्ली में स्थित इस पाँच मंजिली मीनार का निर्माण कुतुबुद्दीन ऐबक ने शुरू करवाया था जो इल्तुतमिश द्वारा पूरा किया गया। लाल और हल्के पीले पत्थर से बनी इस मीनार पर कुरान की आयतें लिखी हुई है।

अभिधम्म पिटक ?

अभिधम्म पिटक बौद्ध धर्म से संबंधित है त्रिपिटक का महत्वपूर्ण अंग है। अभिधम्म पिटक में दार्शनिक सिद्धांतों का संग्रह मिलता है। यह प्रश्नोत्तर के रूप में है।

यक्षगान ?

यह कर्नाटक का नृत्य है और इसका स्रोत ग्रामीण है। यह नृत्य और नाट्य का मिश्रण है। इस नृत्य शैली में नृत्य और गान का संगम होता है। नृत्य की भाषा कन्नड़ तथा विषय पौराणिक हिन्दू महाकाव्यों पर आधारित होता है।

एतमाद-उद-दौला का मकबरा ?

यह मकबरा श्वेत संगमरमर से निर्मित है, पीत्रादुरा या जड़ाऊ रंगीन पत्थर का प्रथम प्रयोग नूरजहां द्वारा निर्मित अपने पिता एतमाद-उद-दौला के आगरा में स्थित इस मकबरे में हुआ है।

वानप्रस्थ आश्रम ?

वानप्रस्थ का अर्थ - '' वन की ओर प्रस्थान करना'' अर्थात गृहस्थाश्रम व्यतीत करने के पश्चात जब व्यक्ति के बाल पक जाएँ, उसके पौत्र उत्पन्न हो जाएँ, तब विषयों से रहित वन का आश्रय ले। 50 वर्ष से 75 की आयु वानप्रस्था की आयु बताई गई है।

चतुर्वर्ण व्यवस्था।

वर्ण-व्यवस्था के अंतर्गत कर्तव्यों और प्रवृत्तियों के विभाजन के आधार पर वैदिक आर्यो ने समाज के व्यवस्थित विकास के उद्देश्य से इसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र नामक चार वर्णो में विभाजन किया जाता था। वर्ण-व्यवस्था के अनुसार चारों वर्णो के कर्तव्य निर्धारित थे जिसे वर्ण-धर्म कहा जाता था।

इजारेदारी ?

भू-राजस्व की प्रथा, जिसमें राज्य और किसानों के मध्य सीधा सम्पर्क नहीं था। इस प्रथा के अन्तर्गत राज्य द्वारा एक निश्चित अवधि के लिए, एक निश्चित रकम के बदले लगान वसूली का अधिकार किसी व्यक्ति को प्रदान कर दिया जाता था। इस प्रथा को ठेकेदारी या मुकातेदारी प्रथा भी कहते है।

पसातिया ?

वह भूमि जो दरबार या जागीरदार द्वारा राज्य सेवा करने वाले व्यक्ति को वेतन के रूप में दी जाती थी।

यह सभी लगानों से मुक्त होती थी। सेवा की समाप्ति पर इस भूमि पर पुनः राज्य का अधिकार हो जाता था।

सुभाष चन्द्र बोस ?

- 23 जनवरी, 1897, को कटक (उड़ीसा) में जन्म।
- स्वतंत्रता संग्राम के अग्रणी सेनानी रहे। दो बार (1938, 1939) कांग्रेस के अध्यक्ष रहे।
- 1939 में फॉरवर्ड ब्लाक का गठन किया।
- आजाद हिंद फौज का गठन किया।
- 1945 में विमान हादसें में मृत्यु।

जातक कथाएँ ।

बुद्ध के पूर्व जीवन से संबंधित कथाएँ जातक कथाएँ कहलाती है।

इक्ष्वांकु वंश ।

संस्थापक- शान्तमूल, ये सातवाहनो के सामंत थे। इनका राज्य कृष्णा नदी व गुटूंर के मध्य था।

नागार्जुन ।

- गुप्त काल के प्रसिद्ध रसायन और धातु विज्ञानी ।
- जिन्होने स्वर्ण, चांदी, एवं ताम्र भस्मो से विभिन्न रोगों के निदान प्रस्तुत किए।

सीताध्यक्ष ।

मौर्यकाल में राजकीय भूमि की व्यवस्था करने वाला प्रधान अधिकारी 'सीताध्यक्ष' कहलाता था।

उलेमा ।

शरीयत के मान्यता प्राप्त रूढ़ीवादी व्याख्याकारो को उलेमा कहा जाता था।

वेदांग एवं उनका विषय ।

वेदो के अर्थ को सरलता से समझने व वैदिक कर्मकाण्डों के प्रतिपादन के सहायतार्थ रचित ग्रंथ ही वेदांग है। इनकी संख्या 6 है।

1. शिक्षा - शुद्ध उच्चारंण शास्त्र
2. कल्प - कर्मकाण्डीय विधि
3. निरूक्त - शब्दो की व्युत्पत्ति
4. व्याकरण - शब्दो की मीमांसा
5. छंन्द - उच्चारण एवं पाठ
6. ज्योतिष - ग्रह एवं नक्षत्र

वुड- डिस्पेच ।

1854 में चार्ल्स. वुड की अध्यक्षता में भारत में शिक्षा सुधार हेतु वृहद योजना तैयार की गई। जिसे भारतीय शिक्षा का " मैग्नाकार्टा" भी कहते है।

इल्बर्ट - बिल ।

भारत सरकार के विधि सदस्य सी.पी इल्बर्ट द्वारा 1883 को विधानपरिषद् में प्रस्तुत विधेयक को उन्ही के नाम पर इल्बर्ट बिल कहा गया। जिसका उद्देश्य जाति- भेद पर आधारित सभी न्यायिक अयोग्यताओं को समाप्त कर भारतीय तथा यूरोपीय न्यायधीशो की शक्तियाँ समान करना था।

गैगिंग - एक्ट -1875 ।

1857 के गदर के बाद गैगिंग एक्ट पारित किया गया जिसने प्रेस की स्थापना को विनियमित करने, मुद्रित सामग्री के परिसंचरण को नियंत्रित करने तथा सभी प्रेसो को लाइसेंस प्राप्त करना अनिवार्य कर दिया।

गदर पार्टी ।

यह एक क्रांतिकारी संगठन जिसकी स्थापना वर्ष 1913 में अमेरिका के सेनफ्रांसिस्को के युगान्तर आश्रम में लाला हरदयाल एवं सोहन सिंह भाखना ने की थी।

लघुउत्तरीय प्रश्न

विजय नगर साम्राज्य में प्रमुख वंश और उसके शासक

उत्तर-विजय नगर साम्राज्य 1336 से 1646 तक अस्तित्व में रहा इस साम्राज्य में प्रमुख वंश और शासक इस प्रकार है-

1. संगमवंश (1336-1485)- हरिहर प्रथम, बुक्का, हरिहर द्वितीय, विरूपाक्ष राय, देवराय प्रथम, देवराय द्वितीय, रामचन्द्र राय।
2. सालुव वंश (1485-1505)- नरसिंह देवराय, नरसिंह राय।
3. तुलुव वंश (1505-1570)- वीर नरसिंह राय, कृष्ण देवराय, अच्युत देवराय।
4. अरविडु वंश (1570-1646)- रामराय, तिरूमल देवराय।

मुगल कालीन स्थापत्य Architecture in Mughal Periods.

उत्तर-मुगल स्थापत्य कला को **भारतीय-इस्लामिक शैली** भी कहा जाता है। इस कला का प्रारंभिक निर्माण फतेहपुर सीकरी है। इसके अतिरिक्त ताजमहल, हुमायूं का मकबरा, लाल किला, बुलंद दरवाजा, बीबी का मकबरा, सिकंदरा, पंचमहल, जहाँगीरी महल, जामा मस्जिद (दिल्ली) आदि प्रमुख स्थापत्य के उदाहरण है।

इसकी विशेषताएं हैं- गोल गुम्बद, ऊंची-नीची मीनारें, नुकीली मेहराब, लाल पत्थर का प्रयोग, पहली बार आकार तथा डिजाइन की विविधता का प्रयोग, पत्थर के अलावा पलस्तर तथा गचकारी का प्रयोग, संगमरमर पर जवाहरात से की गयी जड़ावत, सजावट के लिए पत्थरों को काटकर फूल पत्ते, बेलबूटो को सफेद संगमरमर से जोड़ा जाना, गुम्बदों तथा बुर्जो को कलश से सजाना।

पल्लव कला की विभिन्न शैलियों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

पल्लव शासकों ने गुहा मंदिरों (मंडप) एवं एकाश्मक मंदिरों (रथ) का निर्माण करवाया। इसकी निम्न शैलियाँ है -

महेन्द्र शैली - पल्लव स्थापत्य का प्रथम चरण। गुहा शैली के मंदिरों का निर्माण। मंडगपट्टु का त्रिमूर्ति मंडप, मामंडूर का विष्णु मंडप

मामल्ल शैली - रथ स्थापत्यकला के सुन्दर उदाहरण, सभी मंदिर मामल्लपुरम में स्थित। रथ एक ही पाषाण खंड को काटकर निर्मित किये गये है। कुल आठ मंदिर है जिसमें से धर्मराज मंदिर सबसे बड़ा है।

नन्दिवर्मन शैली - इस शैली के अन्तर्गत कांची के मुकतेश्वर तथा मातंगेश्वर मंदिर, गुड्डिमल्लम का परशुरामेश्वर मंदिर आदि आते है।

राजसिंह शैली - महाबलीपुरम् का शोर मंदिर, कांची का कैलाश नाथ मंदिर तथा वैकुंठ पेरूमल मंदिर इसके उत्कृष्ट उदाहरण है।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में सुभाषचन्द्र बोस का योगदान

उत्तर-महान स्वतंत्रता सेनानी सुभाषचन्द्र बोस ने सिविल सेवा की नौकरी छोड़कर राष्ट्रीय आंदोलन में सम्मिलित हुए। वर्ष 1928 में उन्होंने नेहरू के साथ कांग्रेस में समाजवादी विचारों का नेतृत्व किया तथा नेहरू रिपोर्ट का विरोध किया। वे शक्ति और ताकत के बल पर अंग्रेजों को भारत से बाहर करना चाहते थे। 1938, 1939 में वे कांग्रेस के अध्यक्ष रहे परंतु 1939 में गांधी से मत विभिन्नता के कारण कांग्रेस छोड़ दिया तथा उन्होने 1940 में फारवर्ड ब्लॉक की स्थापना किया। पुनः 1942 में द्वितीय विश्व युद्ध के समय सिंगापुर में आजाद हिंद फौज की स्थापना किया तथा भारत को अंग्रेजो से आजाद कराने का प्रयास किया। बर्मा में आजाद हिन्द फौज की विजय हुई परंतु जापान की हार के बाद उन्हें आत्मसमर्पण करना पड़ा। सुभाष चन्द्र बोस ने समाजवादी, लोकतांत्रिक तथा गणराज्य भारत के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

विदेशों में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की लहर

उत्तर-भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव विदेशों तक फैला। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान गदर आंदोलन संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी तक प्रवासी भारतीयों द्वारा किया जिसमें लाला हरदयाल, भाई परमानन्द, सोहन लाल भाखना, आदि नेताओं ने अंग्रेजों के खिलाफ आंदोलन खड़ा किया। उसी समय तारकनाथ मेहता तथा जीड़ी कुमार ने कनाड़ा के बैकुंवर में अंग्रेजों द्वारा भारतीय के शोषण के बारे में लोगों को अवगत कराया। प्रथम विश्वयुद्ध के समय महेन्द्रनाथ के नेतृत्व में भारतीयों ने अफगानिस्तान में भारत की पहली निर्वासित सरकार का गठन किया। जर्मनी के स्टुटगार्ड सम्मेलन में मैडम भीखाजी कामा ने भारत का पहला राष्ट्रीय ध्वज फहराया। इंग्लैण्ड में श्यामजी कृष्ण वर्मा के नेतृत्व इंडिया हाउस की स्थापना की गयी। एम.एन. राय ने मैक्सिको तथा रूस में भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को नई दिशा देने का प्रयास किया। सुभाष चन्द्र बोस ने बंधक भारतीयों के सहयोग से सिंगापुर में आजाद हिंद फौज की स्थापना की तथा द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान आजादी को लड़ायी को नया मोड़ दिया।

कैबिनेट मिशन प्लान Cabinet Mission Plan

उत्तर-वर्ष 1946 में भारत की स्वतंत्रता तथा विभाजन को बचाने हेतु पैथिक लारेन्स, स्टैफर्ड क्रिप्स, ए.वी. अलेकजेडंर की सदस्यता वाला कैबिनेट मिशन भारत आया। इस मिशन में भारत को संघीय राज्य बनाने, मुस्लिम-हिन्दू बहुल प्रान्तों के अलग-अलग समूह निर्माण, संविधान सभा के चुनाव के तरीके तथा मुस्लिम लीग तथा कांग्रेस का संविधान सभा में प्रतिनिधित्व जैसे मुद्दों पर प्रस्ताव आया था। प्रारंभिक दौर में प्रतिनिधित्व के मुद्दें पर मुस्लिम लीग तथा कांग्रेस के मध्य मतभेद था। इस प्रस्ताव में सिंघ, पंजाब और उ.प्र. सीमा प्रांत को मुस्लिम बहुल वाले समूह में, बंगाल तथा असम को अलग समूह में रखा गया, संविधान सभा का चुनाव प्रांतीय विधान सभाओं मे 10 लाख की जनसंख्या पर एक प्रतिनिधित्व के आधार पर रखने का प्रस्ताव था। देशी रियासतों का प्रतिनिधित्व अलग था।

दादाभाई नौरोजी का आर्थिक राष्ट्रवाद

उत्तर-दादाभाई नौरोजी ने आर्थिक राष्ट्रवाद के रूप में भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का आधार तैयार किया। अंग्रेजों से मित्रता रखते हुए भी उन्होंने

उनके शोषण के चरित्र को उजागर किया तथा बताया कि अंग्रेज भारत को चूष रहे है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'पावर्टी एण्ड अन ब्रिटिश रूल इन इंडिया' में कंपनी शासन के दौरान देश की संपदा की लूट खसोट, शोषण की विवेचना की तथा बताया कि भारत की गरीबी अंग्रेजों की देन है। पुन: उन्होने अपनी दूसरी पुस्तक 'डेब्ट टू इंग्लैण्ड' में धन निकासी का सिद्धांत दिया तथा बताया कि अंग्रेज विभिन्न रूपों में भारत से अपने देश इग्लैण्ड धन ले जा रहे है। वह है- पेंशन के रूप में, अनुभव के रूप में, लाभ के रूप में।

रॉलेट एक्ट के विषय में आप क्या जानते है ।

राजद्रोह **(सेडीशन)** जांच कमटी द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर **18 मार्च 1919** को एक कानून पास किया गया जिसे रोलेट एक्ट कहा जाता है। इस कानून के अनुसार राजद्रोह के आधार पर किसी भी व्यक्ति को बिना मुकदमा चलाए जेल में बंद किया जा सकता था। इसे **'काले कानून'** की संज्ञा दी गई तथा इसके विरोध में महात्मा गांधी द्वारा **'सत्याग्रह'** की स्थापना की गई।

डिवाइड-एट-इंपेरों पर टिप्पणी करों ।

यह अंग्रेजों की प्रसिद्ध नीति **''फूट डालो और शासन करो''** जिसे लार्ड डलहौजी ने प्रारम्भ किया था। तथा बाद में सभी गर्वनर इसी नीति का पालन करके भारत पर शासन करते रहें।

प्रजातंत्र पर रवीन्द्र नाथ टैगोर के विचार ।

रवीन्द्रनाथ टैगोर स्वतंत्रता, समानता एवं न्याय के बहुत बड़े हिमायती थे। उन्होनें कहा है ऐसे समाज में प्रजातंत्र कभी सफल नहीं हो सकता है जहाँ लालच, स्वार्थपन आदि विकसित और प्रोत्साहित हो। उनका मानना था की जनता आत्मज्ञानी तथा क्षमतावान बनने हेतु धर्म का पालन करें तथा आपसी संबंधो में मधुरता लाए।

प्रजातंत्र केवल राजनीतिक अधिकारो का प्राप्त होना तथा निर्वाचन में प्रयुक्त करना मात्र नही है बल्कि सबका कल्याण तथा राष्ट्र का विकास प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए।

सहायक संधि की नीति को समझाइए

- देशी राज्यों को अंग्रेजों की राजनीतिक परिधि में लाने के लिए गर्वनर जनरल लॉर्ड वेलेजली (1798 से 1805) द्वारा सहायक संधि की नीति प्रारंभ की गई।
- जिसके तहत देशी राज्यों की आतंरिक सुरक्षा व विदेश नीति का उत्तर दायित्व अंग्रेजों का था एवं जिसका खर्च संबंधित राज्य को उठाना पड़ता था।
- कम्पनी इस हेतु उस राज्य में एक अंग्रेजी रैजीडेन्ट की नियुक्ति करती थी वह सुरक्षा हेतु अपनी सेना रखती थी।

स्वतंत्रता पूर्व भारतीय उद्योगों के पतन के कारण

ईस्ट इंडिया कम्पनी की विस्तारवादी नीति
- कम्पनी द्वारा बुनकारों पर अत्याचार
- मुक्त व्यापार की नीति
- एकतरफा मुक्त व्यापार की नीति

आधुनिक भारत के निर्माण में ईश्वरचन्द विद्यासागर का योगदान ।

19 वीं शताब्दी में बंगाल में हुए समाज सुधारको में ईश्वरचन्द विद्यासागर का नाम प्रमुख है। उन्होने स्त्रियों की दशा सुधारने तथा उन्हे शिक्षित करने हेतु संस्कृत भाषा, बांग्ला साहित्य पर जोर देकर शिक्षा का प्रसार किया। इस हेतु उन्होने एक कॉलेज की स्थापना भी की।

स्त्रियो की दशा में सुधार लाने हेतु विधवा-पुनर्विवाह को समर्थन दिया और व्यापक आंदोलन चलाया। जिससें वर्ष 1856 में विधवा-पुनर्विवाह अधिनियम पास किया गया। बाल विवाह तथा बहुविवाह को रोकने का भी उन्होने प्रयास किया।

स्त्रियों की शिक्षा हेतु बालिका विद्यालय को स्थापना करवाई। इसलिए उन्हें बंगाल में नारी शिक्षा का अग्रदूत माना जाता है।

सूफ़ी आंदोलन

- 13वीं एवं 14वीं शताब्दी में धार्मिक और सामाजिक सुधार हेतु।
- सुफी जिन आश्रमों में निवास करते थे उन्हें खानकाह कहा जाता है।
- भारत में मुख्य रूप से चिश्ती एवं सुहरावर्दी सिलसिले प्रचलित थी।
- सूफियों के धर्म संघ ''बा शारा'' (इस्लामी सिद्धान्त के समर्थ में) और ''वे-शारा'' इस्लामी सिद्धान्त से बंधे नहीं थे) विभाजित था।
- ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती ने भारत में चिश्ती सिलसिला की शुआत की। चिश्ती सिलासिला का मुख्य केन्द्र अजमेर था।
- सूफियों के सुहवर्दी सिलासिला की स्थापना शेख शिहाबुद्दीन उमर सुहरावर्दी ने की, सिंध एवं मुल्तान मुख्य केन्द्र थे।

मुगल प्रशासन में वजीर एवं दीवान की भूमिका

मुगल शासन व्यवस्था में वजीर एवं दीवान दो ही ऐसे पद थे जो सत्ता संचालन के धूरी थे। जहाँ बजीर का काफी महत्वपूर्ण था, जो सम्राट के बाद शासन के कार्यो को संचालित करने वाला सबसे महत्वपूर्ण अधिकारी था, जिसके कर्तव्यों को अकबर ने दीवान, मीरबख्शी (सेना पति) सद्र-उस-सद्र मे विभाजित किया हुआ था। अकबर के प्रारम्भिक समय में उनका संरक्षण एवं मुगल सल्तनत के बजीर वैरम खां का नाम प्रसिद्ध है। अत: हम कह सकते है कि मुगल प्रशासन मे केन्द्र वजीर का ही पद था। जबकी दीवान का पद प्रांतीय राजस्व का प्रधान जो कि सीधे सम्राट के प्रति जबावदेह था। औरंगजेब के शासन काल में अंक्षद खान ने सर्वाधिक 31 वर्षो तक दीवन के पद पर कार्य किया।

बौद्ध धर्म के पतन के कारण बतलाइये।

बौद्ध धर्म के पतन के कारणें को निम्न बिन्दुओं के आधार पर लिखे-

1. बाह्य आक्रमणकारियों का आगमन,
2. इस्लाम का प्रभाव बढ़ना
3. गौतम वृद्ध के पश्चात् संगठनात्मक क्रम का ना होना
4. बौद्ध भिक्षुओं का आपस में वैमनस्थ
5. तत्कालिक समाज में व्याप्त पूर्वाग्रह एवं रूढ़िवादिताये आदि।
6. बौद्ध धर्म के अनुयायियों का योग विलास एवं सांसारिकता में अधिक सम्मिलित होना।

वैदिक काल के सामाजिक जीवन पर एक टिप्पणी करें।

वैदिक समाज चार वर्णो में विभक्त था। ये वर्ण थे, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र। यह विभाजन व्यवसाय पर आधारित था। ऋग्वेद के 10वे मंडल के पुरूषसुक्त मे चतुर्वर्णो का उल्लेख मिलता है, इसमे कहा गया है कि ब्राह्मण परम पुरूष के मुख से, क्षत्रिय उनकी भुजाओं से, वैश्य उनकी जांघो से एंव शुद्र उनके पैरो से उत्पन्न हुए है। वैदिक काल मे समाज पितृप्रधान था। समाज की सबसे छोटी ईकाई परिवार या कुल थी। जिसका मुखिया पिता होता था। वैदिक काल में स्त्रिया अपने पति के साथ यज्ञ कार्य में भाग लेती थी, बाल विवाह एवं पर्दा प्रथा का प्रचलन नहीं था। विधवा अपने मृतक पति के छोटे-भाई से विवाह कर सकती थी। स्त्रियां का समाज में विशेष स्थान था। वे शिक्षा आदि ग्रहण कर सकती थी। वैदिक काल में मुख्य व्यवसाय पशुपालन एवं कृषि था।

भारत में ब्रिटिश शासन की भू-राजस्व व्यवस्था पर एक टिप्पणी करें।

- 1765 तक उत्तरदायित्व व अधिकार कम होने से भू-राजस्व संबंधी परेशानियाँ कम रही किन्तु 1765-72 के दौर में द्वैध शासन के समय भ्रष्टाचार की स्थिति कायम हो गई क्योंकि दीवानी व निजामत के अधिकारों में अस्पष्टता बनी हुई थी।
- 1770 में शिताब राय व मो. रजा खां पर नियन्त्रण रखने के लिए भू-राजस्व नियन्त्रण परिषद् का गठन किया गया।
- 1772 मे वारेन हेस्टिंग्स के कार्यकाल में 'सर्किट कमेटी' का गठन किया गया जिसमें इजारेदारी (नीलामी) प्रथा को अपनाया गया।
- स्थायी या इस्तमरारी व्यवस्था भी कहते है।
- 1790 में कार्नवालिस द्वारा एक 10 वर्षीय भू-राजस्व व्यवस्था लागू की गयी।
- इस व्यवस्था में भूमि का स्वामी तथा लगान वसूली का अधिकारी जमींदारी को ही माना गया।
- महालवाड़ी में गांव के सदस्य अलग-अलग या फिर संयुक्त रूप से लगान की अदायगी कर सकते थे।

- लगान एकत्र करने के लिए पूरा महाल सामूहिक रूप से उत्तरदायी होता था।
- इस व्यवस्था में प्रत्येक पंजीकृत भूमिदार भूमि का स्वामी माना गया।
- राजस्व जमा करने का उत्तरदायित्व भी किसानों का था।
- यदि किसान सरकार को निर्धारित लगान नहीं पहुंचा पाते थे तो उसे भू-स्वामित्व के अधिकार से वंचित कर दिया जाता था।

इल्बर्ट बिल विवाद

इल्वर्ट बिल को लार्ड रिवन द्वारा पारित किया गया। इसके विवाद के पीछे कारणों की पड़ताल है। के लिए हमें इसके प्रावधान को बारीकी से जानने की आवश्यकता है। लार्ड रिपन वस्तुत: भारत में सबसे लोक प्रिय वायसराय थे। जो बेहद ही उदारवादी थे। इल्वर्ट बिल के विवाद को हम निम्न रूप से जान सकते है।

यह बिल मुख्यत: न्यायालय की प्रक्रिया से संबंधित है जिसमें यह प्रावधान था कि ब्रिटिश अपराधियों की सुनवाई किसी भारतीय जज द्वारा की जा सकेगी। इस बिल में भारतीय जज के द्वारा सुनवाई को लेकर इसका बेहद विरोध हुआ। तथा इससे तत्काल निरस्त करने की मांग की गई। इस बिल का विरोध व्यापक रूप से हुआ तथा गोरो द्वारा रिपन को कड़ी आलोचना का सामना करना पड़ा।

1857 के स्वतन्त्रता संग्राम की असफलता के कारणों पर प्रकाश डालिये।

उत्तर-राजनीतिक एवं प्रशासनिक असंतोष के चलते 1857 का स्वतंत्रता संग्राम गवर्नर जनरल लॉर्ड कैनिंग के शासनकाल में प्रारंभ हुआ। इसकी असफलता के पीछे अनेक कारण थे, जिनमें कछ निम्न प्रकार हैं-

- एकता के अभाव के कारण जहाँ इस संग्राम में अवध, रूहेलखंड, नर्मदा एवं चंबल, क्षेत्र आदि सम्मिलित थे, वहीं पटियाला, ग्वालियर आदि इसके विपक्ष में थे।
- निश्चित योजना एवं नेता के अभाव में यह संग्राम संगठनात्मक क्षमता का परिचय नहीं दे सका।
- सीमित संसाधन (गोला, बारूद, बंदूक, आदि के अभाव) एवं संचार तथा यातायात की व्यवस्था न होने से भी यह आंदोलन असफल रहा।
- अनेक वर्गों द्वारा इस आंदोलन को सहयोग प्राप्त न होने से भी यह असफल रहा।

इस प्रकार इस संग्राम के कार्यकर्ताओं में न तो पूर्णत: एकता, न व्यवस्था और न ही योग्य नेतृत्वता का गुण था, परिणामस्वरूप 1857 का स्वतंत्रता संग्राम असफल रहा।

कैबिनेट मिशन योजना क्या है?

उत्तर-भारत में स्वराज्य एवं स्वतंत्रता की माँग को लेकर जब भारत कठिनाईयों के दौर से गुजर रहा था, उस समय वर्ष 1946 में क्लीमेंट एटली द्वारा कैबिनेट मिशन को भारत में लाया गया। इसके अध्यक्ष सर पैथिक लॉरेंस एवं अन्य सदस्य स्टेफोर्ड क्रिप्स एवं ए.बी. अलेक्जेण्डर थे। इस मिशन ने 16 मई, 1946 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसके अनुसार -

- संघ में देशी राज्यों और ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों की एक कार्यपालिका होगी।
- चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के आधार पर होगा।
- देशी राज्य एवं ब्रिटिश भारत के प्रांतों को सम्मिलित कर एक भारतीय संघ की स्थापना होगी।
- संविधान निर्माण हेतु संविधान सभा का गठन किया जाये।

कैबिनेट मिशन योजना के अन्तर्गत् मुस्लिम लीग को मात्र 73 सीटें प्राप्त होने एवं पाकिस्तान की माँग पूरी न होने के कारण मुस्लिम लीग ने 16 अगस्त की प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस मनाया। अंतत: यह मिशन असफल रहा किन्तु इसने स्वतंत्रता के साथ-साथ स्वशासन की माँग को और अधिक बलवती बना दिया।

नील विद्रोह पर संक्षिप्त जानकारी दीजिये।

उत्तर-उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में कम्पनी के अवकाश प्राप्त यूरोपीय अधिकारियों ने बंगाल एवं बिहार की भूमि पर नील की खेती करने हेतु जमींदारों से भूमि प्राप्त कर ली। नील की खेती हेतु उन्होंने नील कृषकों पर बहुत अत्याचार किये, जिसका वर्णन दीनबंधु ने अपने नाटक 'नील दर्पण' में भी किया है। यूरोपीय अधिकारियों के अत्याचारों से तंग आकर नील कृषकों ने हड़ताल कर दी। यह विद्रोह विद्वानों के समर्थन से अनेक क्षेत्रों में तीव्रता से फैला। विद्रोह को प्राप्त हो रहे समर्थन के कारण सरकार ने वर्ष 1862 मे 'नील आयोग' का गठन कर एक कानून पारित किया, जिससे कृषकों की समस्या का निवारण हो गया। इस विद्रोह से प्रेरणा प्राप्त कर बिहार के नील उगाने वाले काश्तकारों ने दरभंगा एवं चंपारन में 1866-68 में विद्रोह किया एवं जैसोर के कृषकों ने 1883 एवं 1889-90 में विद्रोह किया। इस प्रकार 'नील विद्रोह' ब्रिटेश शासनकाल के दौरान हुआ प्रमुख विद्रोह था।

अलाउददीन खिलजी की '' बाजार सुधार नीति ''

उत्तर : अलाउददीन न केवल एक सफल विजेता था तथा वह एक दूरदर्शी प्रशासक भी था। उसने एक अनन्स बाजार सुधार नीति को प्रारम्भ किया जो लोगों व शासन दोनों के लिए लाभकारी सिद्ध हुई। उसने विभिन्न वस्तुओं के मूल्य को निर्धारित कर दिया तथा जमाखोरी के प्रति सख्त कानून व्यवस्था लागू की। बाजार नियंत्रण हेतु उसने नये पदों का सृजन किया है।

1. दीवान-ए-रसालत : व्यापारियों के नियंत्रण अधिकार
2. शहना-ए-मंडी : बाजार अधीक्षक
3. मुहतसिब : नाप-तौल अधीक्षकसाथ ही अलाउददीन ने एक विस्तृत गुप्तचर व्यवस्था का निर्माण किया जो बेइमानी/धोखाधड़ी करने वाले व्यापरियों सूचना रखती थी।

उदारवादियों एवम् उग्रवादियों की स्वतंत्रता संघर्ष संबंधी कार्यविधि में अंतर कीजिये।

उत्तर: उदारवादियों व उग्रवादियों के मध्य मतभेद का कारण कांग्रेस के भीतर उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए दोनों की विचारधाराओं के बीच विभाजन दोनों रहा। यह प्रदर्शित होता है कि उदारवादियों के विरोध स्वरूप ही उग्रवादियों का उदय हुआ परन्तु लक्ष्यों के अनुसार उग्रवादि, उदारवादियों से पूर्णत: भिन्न नहीं थे। उदारवादियों ने संवैधानिक विरोध के उपकरणों जैसे सभाओं, भाषणों आदि का प्रयोग किया। उदारवादी यह भी समझते थे कि उच्च लक्ष्यों को प्राप्त करने वाले साधन भी उच्च होने चाहिए। वही उग्रवादियों ने उग्र व राजनीतिक रूप से प्रचंड तरीकों को अपनाया उग्रवादियों के संघर्ष के आर्थिक पहलु जैसे विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार व स्वदेशी वस्तुओं की बढ़वा देना व गैर आर्थिक पहलू स्कूलों व कॉलेजों का बहिष्कार करना था।

मंदिर निर्माण की शैलियाँ बताइए।

पूर्व मध्य काल में मंदिर निर्माण की तीन शैलियां विकसित हुई - नागर, द्रविड और वेसर शैली। नागर शैली उत्तरी भारत में हिमालय से विंध्य प्रदेश के भू-भाग में, द्रविड़ शैली कृष्णा तथा कुमारी अंतरीप के बीच अर्थात् आधुनिक तमिलनाडु प्रदेश और वेसर विंध्य और कृष्णा के बीच, जिसे दक्षिणावर्त भी कहा जाता है। वेसर शैली में नागर और द्रविड़ शैली के तत्व मिश्रित है। यह सम्मिश्रण होयसल वंश के राजाओं के मंदिरों में परिलक्षित होता है। उड़ीसा में स्थित भुवनेश्वर का लिंगराज मंदिर, कोणार्क का सूर्य मंदिर तथा खजुराहो के मंदिर नागर शैली में है। खजुराहो के मंदिरों में कंदरिया महादेव का मंदिर सर्वोत्तम है।

स्तूप से आप क्या समझते हैं।

स्तूप- प्राचीनतम बौद्ध स्मारक हैं। स्तूप का शाब्दिक अर्थ है- किसी वस्तु का ढेर। स्तूप का विकास संभवत: मिट्टी के ऐसे चबूतरे से हुआ, जिसका निर्माण मृतक की चिता के ऊपर अथवा मृतक की चुनी हुई अस्थियों के रखने के लिए किया जाता था। गौतम बुद्ध के जीवन की प्रमुख घटनाओं, जन्म से संबंधित, धर्म चक्र प्रवर्तन तथा निर्वाण से संबंधित स्थानों पर स्तूपों का निर्माण हुआ। स्तूप के चार भेद है; शारीरिक स्तूप, पारिभोगिक स्तूप, उद्देशिका स्तूप और पूजार्थक स्तूप। दरअसल, स्तूप एक गुम्बदाकार भवन होता था, जो बुद्ध से संबंधित सामग्री या स्मारक के रूप में स्थापित किया जाता था।

चोल स्थापत्य कला की विशेषताएँ बताइए।

चोलों ने पल्लवों की स्थापत्य कला को आगे बढ़ाया। चोलों की द्रविड़ शैली की कुछ विशेषताएं है। - वर्गाकार विमान, मण्डप, गोरपुरम, कलापूर्ण स्तंभों से युक्त वृहत् सदन, सजावट के लिए पारंपरिक सिंह, बैकेट तथा संयुक्त स्तंभों के प्रयोग। मंदिर का समग्र ढांचा एक प्रांगण के अंदर ऊंची दीवारों से घिरा होता था, जिसमें ऊँचे प्रवेश द्वार थे, जिन्हें 'गोपुरम्' कहा जाता था। मुख्य प्रतिमा कक्ष (गर्भगृह) के ऊपर एक के ऊपर एक मंजिल का निर्माण होता था। इन मंजिलों की संख्या 5 से 7 तक होती थी। ये एक विशेष शैली में बनी होती थीं। जिन्हें 'विमान' कहते थे। प्रायः प्रतिमा कक्ष के समाने बारीक खुदाई वाले स्तंभों पर टिकी सपाट छत वाला एक बड़ा कक्ष होता था। जिसे 'मंडप' कहते थे।

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

अशोक के शासन काल में 'धम्म' का क्या महत्व था क्या अशोक द्वारा स्थापित 'धम्म' राजनीतिक उद्देश्य हेतु थे

उत्तर-महान मौर्य शासक अशोक के शासन काल में 'धम्म' का विशेष महत्व था। 'धम्म संस्कृत शब्द 'धर्म' से बना है। यह जीवन तथा समाज के नियमों को इंगित करता है यद्यपि इसका संबंध धर्म से है तथापि इसमें धर्मनिरपेक्ष नैतिक नियमों, कर्तव्यों का भी उल्लेख है। धम्म का उद्देश्य सभी धर्मो के लोगों में नैतिक तथा सामाजिक नियमों का पालन और जागरूकता स्थापित करना था। 'धम्म' दया, दान, शुचिता, साधुता, संयम व सत्य पर जोर देता है। हांलाकि सम्राट अशोक ने 'धम्म' के सिद्धांत को धार्मिक और नैतिक उद्देश्यों से अपनाया था परन्तु इसमें राजनीतिक निहितार्थ थे। 'धम्म' का महत्व है-

1. 'धम्म' के द्वारा लोगों को मातापिता, गुरूओं, तथा बड़ो के प्रति आज्ञाकारी बनाया जाता था, जिससे लोग समाज के लिए उपयोगी तथा जिम्मेवार नागरिक बन सके।
2. 'धम्म' के प्रारम्भिक चरणों में लोगों को लोककल्याणकारी कार्यो के लिए उत्प्रेरित किया गया जैसे कुए खुदवाना, वृक्ष लगवाना, चिकित्सा सुविधा उपलब्ध करवाना आदि।

राजनीतिक उद्देश्य

1. यह स्पष्ट होता है कि अशोक का 'धम्म' लोगों को राजनीतिक वफादारी के प्रति प्रेरित करता है। जिससे जनता राज्य के प्रति वफादार रहे तथा समाज व संघ की सेवा करें। सम्राट अशोक जानते थे कि इतने विस्तृत संघ पर केवल तलवार और शस्त्र के बल पर लोगों पर शासन नहीं किया जा सकता है अतः यह राजनीतिक उद्देश्य के लिए था।
2. केन्द्रीकृत राजव्यवस्था वाला मौर्य साम्राज्य यह चाहता था कि समस्त जनता में एक जैसी भावनाओं का विकास हो जिसमें लोग मिल-जुल कर रह सके इस हेतु 'धम्म अत्यधिक सहायक था। भारतीय संविधान में 'भातृत्व' शब्द इसी उद्देश्य हेतु रखा गया है।
3. मौर्य साम्राज्य में आर्थिक, धामिक, राजनीतिक, सामाजिक शक्तियां एक दूसरे के विरोध के रूप में कार्य कर रही थी। 'धम्म' सिद्धांत के माध्यम से अशोक ने कुछ 'बंधनकारी' तत्वों को प्रोत्साहित किया। इस प्रकार अशोक द्वारा धम्म को प्रचारित करना धार्मिक सामाजिक उद्देश्यों के साथ राजनीतिक उद्देश्यों हेतु भी था।

मध्य युग में भक्ति आंदोलन के उदय के क्या कारण थे। उसकी विभिन्न धाराओं की व्याख्या कीजिए। भक्ति आंदोलन का भारतीय समाज पर क्या प्रभाव पड़ा

उत्तर-भक्ति आंदोलन धार्मिक कुरीतियों का विरोध करता है तथा यह ईश्वरीय आस्था तथा भक्ति के द्वारा मोक्ष प्राप्त करने का आह्वान करता है। भक्ति आंदोलन की शुरूआत दक्षिण भारत में हुई और यह 13वीं सदी में उत्तर भारत में फैली। जब भारत में मुस्लिमों का शासन था। नयनार तथा अलवार संत भक्ति आंदोलन के आरंभकर्ता माने जाते है। भक्ति आदोलन के उदय के निम्नलिखित कारण थे-

- शंकराचार्य का एकेश्वरवादी विचार।
- मुस्लिम शासकों का प्रभाव।
- धार्मिक कुरीतियाँ, पोंगा पंथी से समाज में नकारात्मक माहौल।
- इस्लाम धर्म की चुनौतियाँ।
- सूफीवाद का प्रभाव।
- हिन्दूधर्म में जीवन के प्रति पलायनवादी विचारधार।
- चैतन्य, कबीर, मीरा, तुलसी, सूर का प्रभाव।

भक्ति आंदोलन का समाज पर प्रभाव-

- क्षेत्रीय सहित्य का विकास-मराठी, गुजराती, उड़िया आदि।
- हिन्दूधर्म में जात-पात तथा अन्य कुरीतिया कमजोर हुई।
- महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ।
- सहिष्णुता तथा मानवीयता की भावना में वृद्धि।
- सीमित रूप से इस्लाम धर्म से मेल मिलाप।
- कर्मकाण्ड, तीर्थ, अंधविश्वास की जगह हिन्दू धर्म में आत्मा तथा मन की पवित्रता पर जोर।
- सती प्रथा, शराब, तम्बाकू आदि कुरीतियों के विरूद्ध जोरदार आवाज।
- भक्ति आंदोलन तथा सूफी आंदोलन हिन्दू तथा इस्लाम को समीप लाये, मित्रता सहिष्णुता, शांति व सहयोग से जीना सिखाया।

1931 का करांची प्रस्ताव बाद के वर्षो के लिए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का बुनियादी आर्थिक राजनीतिक कार्यक्रम बन गया। व्याख्या कीजिए

उत्तर-1931 में संपन्न कराचीं अधिवेशन, बाद के राष्ट्रीय आंदोलन और संविधान निर्माण के समय एक महत्वपूर्ण बुनियादी कार्यक्रम बन गया। इस अधिवेशन में पूर्ण स्वराज्य को परिभाषित करते हुए समस्त राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक कार्यक्रमों को सम्मिलित कर लिया, जो इस प्रकार है

1. राजनीतिक आजादी के साथ आर्थिक तथा सामाजिक आजादी के लक्ष्य की घोषणा की गयी।
2. प्रेस की आजादी, संगठन निर्माण की आजादी, धर्म, मत विश्वास की आजादी की घोषणा।
3. कानून के समक्ष समानता, सर्वभौम व्यस्क मताधिकार, स्वतंत्रता तथा नियमित चुनाव।
4. अनिवार्य प्रांरभिक शिक्षा, कर, मालगुजारी में कटौती, किसानों को सस्ता कर्ज, सूदखोरों पर नियंत्रण।
5. मजदूरों के लिए बेहतर सेवा शर्ते, काम के नियमित घंटे, मजदूरों को यूनियन बनाने की आजादी।
6. उद्योगों, संरचनाओं, परिवहन साधनों पर सरकारी स्वामित्व

अतः इस अधिवेशन द्वारा घोषित उपरोक्त कार्यक्रम बाद के वर्षो में कांग्रेस तथा भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के उद्देश्यों तथा लक्ष्यों का सार बन गये। आगे के वर्षो में केवल राजनीतिक आजादी की मांग नही रही, केवल अंग्रेज शासकों को ही भगाना मात्र उद्देश्य नही रहा वरन् स्थानीय राजाओं, स्थानीय शोषकों से आजादी के साथ-साथ कुछ सामाजिक प्रथाओं, आर्थिक गुलामी से भी आजादी की घोषणा थी। **इस सम्मेलन का राष्ट्रीय आंदोलन पर निम्नलिखित प्रभाव रहा-**

1. कांग्रेस के अन्दर और बाहर समाजवादी दलों का उदय हुआ।
2. जहां पहले केवल राजनीतिक और नागरिक अधिकारों पर बल दिया जा रहा था वहां अब सामाजिक तथा आर्थिक मांगों पर भी बल दिया जाने लगा।
3. कांग्रेस में जवाहरलाल नेहरू तथा सुभाष चन्द्र बोस जैसे नेताओं का प्रभाव बढ़ा जो समाजवादी सिद्धांतों से प्रभावित थे।
4. 1937 में प्रांतों में कॉग्रेस के सत्ता में आने पर, 1931 के कराची घोषणा के प्रभावों को देखा जा सकता, जिसका क्रियान्वयन कांग्रेसी सरकारों ने किया।
5. संविधान निर्माण के समय नीति निर्देशक तत्वों और मौलिक अधिकारों में 'कराची प्रस्ताव' की मांगों को अपनाया गया।

इस प्रकार कराची संकल्प प्रस्ताव वाद के राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक मांगों का सार तत्व बना, जिसे संविधान निर्माण तक देखा जा सकता है।

क्रिप्स मिशन

- ब्रिटेन की लेबर पार्टी के नेताओं के दबाव से चर्चिल ने भारत के युद्ध में सहयोग प्राप्ति के उद्देश्य से र्स्टफोर्ड क्रिप्स के नेतृत्व में एक सद्भाव मण्डल भेजा।
- इन्होंने भारत के राष्ट्रीय आंदोलन का समर्थन किया
- घोषण की - भारत में स्वशासन की स्थापना की ब्रिटिश नीति का उद्देश्य है, किन्तु जो घोषणा पत्र साथ लाए थे वह निराशा जनक था जिसमें भारत को डोमिनियन राज्य बनाने एवं ऐसी संविधान निर्मात्री परिषद् बनाये का वादा किया जिसके कुछ सदस्य प्रांतीय विधायिकाओं द्वारा निर्वाचित कुछ रियासतों के शासकों द्वारा नामांकित होगे।
- इन प्रस्तावों को सिमित प्रस्ताव की संज्ञा मिली व आलोचना हुई
- इनमें पाकिस्तान के बनाने की गुजाइश पर तो नेताओं ने कडी आपत्ती जताकर इसको पूर्णतः खारिज किया।

बंग-भग

- अंग्रेजों ने शासन व्यवस्था को दुरूस्थ बनाने का संदर्भ देकर बंगाल विभाजन की नींव रखी।
- अंग्रेजी हुकूमत का मकसद मूल बंगाल में बंगालियों की आबादी कम कर उन्हें अल्पसंख्यक बनाना था।
- 19 जुलाई 1905 को बंगाल निर्माण की घोषणा की गई।
- भारतीयों में इसके विरोध स्वरूप तीव्र प्रतिक्रिया हुई।
- उक्त- 7 अगस्त 1905 में कलकत्ता टाउन हॉल में स्वेदशी संग्रहित आंदोलन की घोषणा।
- 16 अक्टूबर 1905 पूरे बंगाल में शोक दिवस मनाया।
- 7 अगस्त 1905 को बहिष्कार प्रस्ताव पारित
- आन्दोलन ने नई लहर का रूप लिया।
- बंगाल का यह आंदोलन देखते ही देखते पूरे भारत में फैल गया।
- लक्ष्य बना स्वराज

अतः इस विभाजन ने अंग्रेजों के विरूद्ध पूरे भारत को एकता के सूत्र में पिरोने का काम किया।

मौर्य प्रशासन

उत्तर:मौर्य प्रशासन एक विशाल केन्द्रीयकृत साम्राज्य था। यह तीन प्रमुख प्रशासनिक स्तरों-केन्द्रीय, प्रान्तीय व नगरीय में विभक्ता था। प्रशासनिक व्यवस्था का कौटिल्य व मेगस्थनीज ने विपुल वर्णन किया है। प्रशासनिक व्यवस्था में शासक का पद सर्वोच्च था (चक्रवर्ती सम्राट)। केन्द्र में प्रशासनिक व्यवस्था हेतु दो श्रेणी के अधिकारी नियुक्त थे-

1. तीर्थ (जिनकी संख्या 18 होती थी) प्रथम श्रेणी के अधिकारी थे। तीर्थ भी पुनः दो वर्गों में विभक्त थे-1 मंत्रिण (कोबिनेट मंत्री), जिनकी संख्या 4 से 5 होती थी।) इनमें राजपुरोहित, सेनापति, युवराज, पटरानी व प्रधानमंत्री आदि शामिल थे। इनका वेतन लगभग 48 हजार पण वार्षिक था।
2. राज्यमंत्री (मंत्रिपरिषद), जिनका वार्षिक वेतन 12 हजार पण था समाहर्ता (वित्तमंत्री), सन्निधाता (कोषाधिकारी), प्रदेष्टा (फौजदारी न्यायालय का न्यायधीश), व्यवहारिक (दीवानी न्यायालय का न्यायाधीश) नामक अधिकारी हुआ करते थे। इन मंत्रियों की नियुक्ति से पूर्व इनकी प्रतिभा के परीक्षण का साक्ष्य भी प्राप्त होता है।

   द्वितीय श्रेणी के अधिकारियों में 'अध्यक्ष' की नियुक्ति होती थी। सतीध्यक्ष, मुद्राध्यक्ष, लक्षणाध्यक्ष आदि प्रमुख अध्यक्ष नियुक्त किये जाते थे प्रान्तों से नीचे के मुखिया राज्यपाल होते थे, जो सामान्यतः राजकुमारों को नियुक्त किया जाता था। अशोक के काल में पांच प्रान्तों का साक्ष्य मिला है। कहलाता था। शासन की अंतिम इकाई ग्राम थी।

   मेगस्थनीज ने अपनी पुस्तक इंडिका में पाटलीपुत्र के नगरीय प्रशासन का उल्लेख किया है। शासन चलाने हेतु नगरों में 5-5 सदस्यों की 6 समितियां थी- जनगणना समिति, विदेशियों की देखभाल हेतु समिति, निर्मित वस्तुओं की बिक्री हेतु समिति, उद्योग व शिल्प समिति, बिक्री कर वसूली समिति, व्यापार व वाणिज्य समिति।

   मौर्य प्रशासन एक गतिशील व सुदृढ़ व्यवस्था थी जो तत्कालिन विशाल साम्राज्य को चलाने हेतु एक निरंकुश प्रणाली थी।

अबुल Qजल द्वारा वर्णित अकबर की '' सुलह-कुल नीति'' पर चर्चा करें।

उत्तरः सुलह- कुल नीतिः अबुल फजल ने सुलह कुल को प्रबुद्ध शासन का आधार बताया। सभी धर्मो व विचारकों को अभिव्यक्ति की इस शर्त पर स्वतंत्रता थी कि वे राज्य की प्रभुसत्ता के विरूद्ध अथवा आपस में न लड़ें। सुलह कुल की नीति को राज्य की नीतियों द्वारा क्रियान्वित किया गया। उदाहरण के लिए मुगलों के दरबार में कुलीन वर्ग-ईरानी, तुर्को, अफगानों व राजपूतों से मिलकर बना था। परन्तु उनकी नियुक्ति बादशाह के प्रति निष्ठा व उच्च सेवा पर ही की जाती थी। धार्मिक आधार पर नहीं। अकबर ने 1563 में तीर्थयात्रा कर को समाप्त किया तथा 1564 में जजिया को समाप्त कर धार्मिक सहिष्णुता का परिचय दिया। राज्य के सभी अधिकारियों को भी सुलह कुल को प्रशासन में अपनाने के निर्देश दिये गयें सभी मुगल सम्राटों ने मंदिरों-मस्जिदों आदि पूजास्थलों के रखरखाव हेतु अनुदान दिये। जब युद्ध में मंदिर नष्ट हो जाते थे तो बाद में उनकी मरम्मत के लिए अनुदान दिये जाते थे। यह परंपरा अकबर के बाद भी जारी रही।

लोक नृत्य से आप क्या समझते है ? भारत के विभिन्न भागों में प्रचलित प्रमुख लोकनृत्यों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

आम लोगों में प्रचलित नृत्यों को लोक नृत्य कहा जाता है। सामान्यतः इसका जन्म क्षेत्र-विशेष में होता है, और यह उस क्षेत्र की भाषा, संस्कृति और संस्कार को समावेशित कर लेती हैं। लोक नृत्य शास्त्रीय बंधनों से स्वतंत्र होते है। और इसका आयोजन उदात्त भावनाओं से प्रेरित होकर किया जाता है। भारत के प्रत्येक राज्य में कोई-न-कोई लोक नृत्य प्राचीन काल से प्रचलित रहा है। इन लोक नृत्यों की अपनी कुछ विशिष्टताएं होती है। कुछ महत्वपूर्ण लोक नृत्य इस प्रकार हैं।

1. ***बिहू नृत्य*** - यह असम राज्य का प्रमुख लोक नृत्य है। असम की लचारी तथा खासी जनजातियों द्वारा सामूहिक रूप से वर्ष में तीन बार आयोजित किया जाता है।
2. ***छाऊ नृत्य*** - इस नृत्य में ऐतिहासिक व पौराणिक कथाओं को प्रदर्शित किया जाता है। चैत्र पर्व पर अयोजित किया जाने वाला यह नृत्य बिहार, बंगाल तथा ओडिशा के आदिवासियों का युद्ध नृत्य है। इस नृत्य में प्रत्येक अंग का अलग-अलग ढंग से प्रदर्शन किया जाता है।
3. ***पण्डवानी नृत्य*** - पांडवों की कथा से संबंधित होने के कारण इसका नाम 'पण्डवानी' नृत्य पड़ा। यह छत्तीसगढ़ राज्य का एकल नृत्य है। इस नृत्य में नर्तक वाद्ययंत्रों की धुन पर नृत्य एवं अभिनय के माध्यम से पाण्डवों की कथा का प्रदर्शन करते है।
4. ***गरबा*** - नवरात्रि के अवसर पर आयोजित किया जाने वाला स्त्रियों का यह लोक नृत्य गुजरात राज्य में प्रचलित है। इस नृत्य में एक स्त्री बीच में खड़े होकर अपने ऊपर मिट्टी का एक घड़ा रखती है, जिसमें चारों ओर छिद्र होता है तथा एक दीपक रखा जाता है। कुछ स्त्रियां बीच में खड़ी स्त्री को घेरा बनाकर वृत्ताकार नृत्य करती है।
5. ***छपेली नृत्य*** - कुमायूं के इस प्रसिद्ध नृत्य में सहजता, उल्लास तथा निश्चिन्तता की अभिव्यक्ति होती है। इस नृत्य में दो नर्तक होते है, जो प्रेमी-प्रेमिका, भाई-बहन, जीजा-साली कोई भी हो सकते है।
6. ***विदेशिया नृत्य*** - यह लोक नृत्य उत्तर प्रदेश एवं बिहार राज्य के भोजपुरी भाषा-भाषी क्षेत्रों के ग्रामीण जनता में प्रचलित है, यह नृत्य मनोरंजन के साथ-साथ सामाजिक एवं पारिवारिक बुराइयों को उजागर कर लोगों को उपदेश देने का भी कार्य करता है।
7. ***रासलीला नृत्य*** - इस नृत्य में गोप एवं गोपियां परंमरागत वेशभूषा में नृत्य करते है, इस नृत्य में राधा-कृष्णा की मुख्य भूमिका होती

है। इस नृत्य का प्रचलन उत्तर प्रदेश, बिहार, गुजरात, मणिपुर आदि कई राज्यों में है।

8. ***डांडिया नृत्य*** - डांडिया, गुजरात राज्य का एक प्रसिद्ध नृत्य है, इसमें स्त्रियां अपने हाथ में छोटे-छोटे, रंग-बिरंगे डांडिए लेकर वृत्ताकार खड़ी होकर गीत गाती है।

9. ***तमाशा*** - महाराष्ट्र राज्य के इस नृत्य नाटिका का विकसित करने का श्रेय वंशीधर भट्ट को है, यह शास्त्रीय संगीत और नाटक का मिश्रण है, जिस स्थान पर यह आयोजित होता है, उसे 'अखाड़ा' कहते है।,

10. ***नौटंकी*** - उत्तर प्रदेश के इस लोकप्रिय प्रतिनिधि लोक नाट्य में अभिनय और गायन का संगम है, सभी पात्र संवादों की अभिव्यक्ति खुली आवाज में गाकर करते है, एक सूत्रधार दर्शकों को कहानी का मूल बताता है, तथा बीच-बीच में हास्य और नृत्य का समावेश भी होता है।

11. ***भांगड़ा*** - पुरूषों द्वारा किया जाने वाला यह नृत्य पंजाब राज्य में अत्यंत लोकप्रिय है। इसमें वाद्य यंत्रों एवं गायन के साथ-साथ पुरूषों की टोलियां मस्ती भरा नृत्य करती है।

12. ***कठपुतली नृत्य*** - राजस्थान का यह प्रसिद्ध लोक नृत्य है। बलई जाति के लोगों को इस कला का मर्मज्ञ समझा जाता है। विभिन्न समारोहों जैसे-विवाह आदि में इस नृत्य का आयोजन किया जाता है।

13. ***कालबेलिया नृत्य*** - पेशे से संपेरे, राजस्थान की कालबेलिया जनजाति की स्त्रियों का यह नृत्य है। कालबेलिया स्त्रियों पूंजी पर इजेनी और गीत के सहारे नृत्य करतीं है। नृत्य में धुनें मोहक तथा गति अत्यधिक तीव्र होती है।

14. ***घूमर*** - यह नृत्य घूम-घूम कर लिया जाता है, इस कारण इसे 'घूमर नृत्य' के नाम से जाना जाता है। राजस्थान राज्य में प्रचलित इस लोक नृत्य में केवल स्त्रियां ही भाग लेती है। इसका अयोजन प्रत्येक मांगलिक एवं पारंपरिक उत्सवों तथा दुर्गापूजा एवं होली आदि के अवसर पर किया जाता है।

चोलयुगीन स्थानीय स्वशासन वर्तमान पंचायती व्यवस्था का सूत्रधार था। इस कथन कें सदर्भ में चोलयुगीन प्रशासन की समीक्षा करे ।

चोल शासन की प्रकृति प्रबल केन्द्रीय नियंत्रण के साथ-साथ स्थानीय स्वायत्तता की थी। शासन का स्वरूप राजतंत्रात्मक था। चोलकालीन स्थानीय प्रशासन का उल्लेख परान्तक के उत्तरमेरूर अभिलेखों में मिलता है। प्रत्येक ग्राम में अपनी सभा हाती थी जो प्राय: केन्द्रीय नियंत्रण से मुक्त होकर स्वतंत्र रूप से ग्राम शासन का संचालन करती थी।

ग्राम सभा को राज्य के प्राय: सभी अधिकार प्राप्त थे। इनके पास सामूहिक सम्पत्ति होती थी तथा यह न्यायिक कार्य भी सम्पन्न करती थी यह ग्रामवासियो पर कर लगाने, वसूलने तथा बेगार लेने का भी अधिकार रखती थी। ग्रामसभा के मुख्य कार्य पेयजल, उपवन, सिंचाई व आवागमन के साधनों की व्यवस्था करना था। जब तक ग्राम सभा अपने कर्तव्यों का पालन करती रहती तथा राज्य को नियमित कर पहुँचाती थी तब तक राज्य उसके शासन में हस्तक्षेप नही करता था।

इस प्रकार चोल कालीन प्रशासन आज के पंचायती राज्य शासन से काफी साम्यता रखता है। अत: यह कहना उचित होगा कि चोलयुगीन स्थानीय स्वशासन वर्तमान पंचायती व्यवस्था का सूत्रधार था।

''सिन्धुघाटी सभ्यता का विकास न तो सुमेरियन लोगों ने किया और न ही आर्यो ने बल्कि यह तो एक क्रमिक विकास का परिणाम था'' विवेचना कीजिए ।

इस मत को मानने वालों मे फेयर सर्विस, जे.एफ टेलर आदि प्रमुख है। इन विद्वानो के अनुसार सिंधु सभ्यता का उद्भव ईरानी, बलूच और सिन्धु संस्कृतियों तथा भारत की स्थानीय संस्कृतियों से हुआ। फेयर सर्विस के अनुसार प्राक हडप्पन ग्रामीण संस्कृतियो से इस सभ्यता का उदय हुआ। प्रसिद्ध इतिहासकार अमलानन्द घोष ने अपने शोधो से यह सिद्ध कर दिया कि राजस्थान के बीकानेर में स्थित **''सोथी संस्कृति''** से ही इस सभ्यता का उद्भव हुआ है। उन्हें सूरकोटड़ा से सिंधु संस्कृति और सोथी संस्कृति के अवशेष साथ-साथ मिले है।

इसी तरह कालीबंगा से मिले सिंधु सस्कृति के अवशेष सोथी से मिले अवशेषो के समान पाए गए। प्रसिद्ध इतिहासकार आल्चिन और डी. पी. अग्रवाल ने लिखा है कि सोथी संस्कृति कोई अलग संस्कृति नहीं थी बल्कि सिन्धु सभ्यता का ही प्रारम्भिक रूप भी। इसके क्रमिक विकास के पक्ष में तर्क निम्न है-

1. नदी घाटी क्षेत्र एवं प्रचुर जल संसाधन
2. कृषि की अनुकूल परिस्थितिया
3. अनुकूल जलवायु
4. खनिज संसाधनो की उपलब्धता

इन सभी कारको के प्रभाव के कारण जनसंख्या वृद्धि को बल मिला। सामाजिक-सांस्कृतिक सम्पर्क क्षेत्रों का विस्तार हुआ। फलस्वरूप अन्तत: क्षेत्रीय परम्पराओं का एकीकरण एवं हडप्पा सभ्यता का उद्भव हुआ।

क्या आपके विचार में खिलाफत आन्दोलन को महात्मा गाँधी के समर्थन ने उनकी धर्मनिरपेक्ष साख पर बट्टा लगा दिया था। घटनाओं कें आकलन को आधार बनाते हुए अपना तर्क प्रस्तुत करें ।

उत्तर में स्पष्ट करना है कि गांधीजी ने एक साम्प्रदायिक आंदोलन को समर्थन भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की सफलता को प्रोत्साहित करने के लिए दिया था।

गांधीजी के दर्शन में धार्मिक पूर्वाग्रहो का नितान्त अभाव था वह छुआ-छूत के अन्त के माध्यम से भी सभी धर्मो की व्यापक एकता के समर्थक थें। ऐसी ही सामाजिक सौहार्द की भावना से प्रेरित होकर गांधीजी ने खिलाफत आंदोलन को भी समर्थन दिया।

खिलाफत के प्रश्न पर जो भी भारतीय नेता राष्ट्रीय जागरण से सहानुभूति रखते ये वे खिलाफत आंदोलन के प्रवर्तक बन गए। इनमें अलीबन्धु, मौलना आजाद व महात्मा गांधी जैसे नेता शामिल थे। इस आंदोलन का उद्देश्य टर्की के विभाजन को रोकने तथा खलीफा को पुन: प्रतिष्ठित करना था। किन्तु मुस्तफा कमालपाशा के द्वारा खलीफा के पद को समाप्त किए जाने के साथ ही खिलाफत आंदोलन भी समाप्त हो गया।

गांधीजी का इस आंदोलन को दिया गया समर्थन उनकी दूरदृष्टि का परिणाम था। क्योकि उन्हे ज्ञात था कि राष्ट्रीय आंदोलन की सफलता के लिए साम्प्रदायिकता को हतोत्साहित करना आवश्यक था। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए राष्ट्रीय नेताओं ने मुस्लिमों को प्रसन्न तो किया लेकिन यह प्रयास भारत के विभाजन को रोक न सका।

भाषायी क्षेत्रवाद एवं राज्यों का पुनर्गठन

1950 ई. में पृथक राज्य के मुद्दे पर मद्रास के पूर्व मुख्यमंत्री टी. प्रकाशम ने कांग्रेस से इस्तीफा देकर एवं 1951 ई. में स्थानीय नेता सीताराम की भूख हड़ताल ने भी इस मुद्दे को गर्माया परन्तु आन्दोलन में व्यापक उबाल तब आया जब 19 अक्टूबर, 1952 ई. को मद्रास में पोट्टी श्रीरामलू ने आमरण अनशन शुरू कर दिया एवं 15 दिसम्बर, 1952 को अनशन के दौरान ही उनकी मृत्यु हों गई। उनकी मृत्यु होते ही आन्ध्र के क्षेत्रों में ऐसा अराजक और हिंसक माहौल बना कि दो दिन के भीतर ही नेहरू को पृथक आन्ध्र प्रदेश राज्य के गठन की घोषणा करनी पड़ी। 1 अक्टूबर, 1953 ई. को अधिकारिक रूप से आन्ध्र प्रदेश भाषाई आधार पर भारत का पहला पुनर्गठित राज्य बना। इसी के साथ, तमिल भाषी राज्य के रूप में तमिलनाडु अस्तित्व में आया हालांकि यह नामकरण 1969 में हुआ।

आन्ध्र प्रदेश के गठन के बाद अन्य भाषाई समूहों के द्वारा भी पृथक राज्य की मांग का आन्दोलन जोर पकड़ने लगा। इन मांगों के मद्देनजर सरकार ने 1953 में एक अन्य राज्य पुनर्गठन आयोग की नियुक्ति की जिसके तीन सदस्य फजल अली, के. एम. पणिक्कर एवं

हृदयनाथ कुंजरू थें। आयोग ने अक्टूबर, 1995 मं अपनी रिपोर्ट दी जिसकी मुख्य बातें निम्नांकित हैं:-

- भाषाई आधार, प्रशासनिक सुविधा व समानता के दृष्टिकोण से राज्यों के पुनर्गठन के लिए एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कारक है। परन्तु यह एकमात्र कारक नही है। प्रशासनिक व आर्थिक कारकों के साथ-साथ अन्य पक्षों पर भी समुचित ध्यान दिया जाना चाहिए। ये अन्य पक्ष राष्ट्र की एकता व अखण्डता तथा सुरक्षा की ओर इंगित थे।
- दक्षिण की चार प्रमुख भाषाओं तेलुगू, तमिल, कन्नड़ व मलयालम के आधार पर क्षेत्र का पुनर्गठन किया जाए। जिला व ताल्लुकों को अलग-अलग भाषाएं बोलने वालों के बहुमत के आधार पर पुनर्गठन किया जाए।
- उत्तर भारत में भी इस तरह के राज्यों का पुनर्गठन किया जाए और विशाल हिन्दीं प्रदेशों में से चार राज्य उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश और राजस्थान निकाले जाए। पूरब के प्रदेशों में मामूली फेरबदल की संस्तुति की गई।
- अलग सिक्ख प्रान्त का गठन उचित नहीं माना गया और न ही बम्बई प्रान्त को भाषाई आधार पर बांटने की स्वीकृति दी गई। अलबत्ता, आयोग ने मराठी भाषी दूरवर्ती जिलों को मिलाकर एक विदर्भ प्रान्त गठित करने की संस्तुति की।
- आयोग ने असम व बिहार से पृथक आदिवासी राज्य बनाने की मांगो का विरोध किया।

आयोग की रिपोर्ट को मामूली संशोधनों के साथ लागू किया गया। इसके तहत संसद ने नवम्बर, 1956 ई. में राज्य पुनर्गठन अधिनियम बनाया, जिसमें 14 राज्यों व 6 संघशासित प्रदेशों का निर्माण किया गया। इस अधिनियम की अन्य प्रमुख बातें निम्नांकित थी-

- हैदराबाद रियासत का तेलंगाना प्रदेश आन्ध्र प्रदेश राज्य में मिला दिया गया।
- एक नए राज्य केरल का निर्माण हुआ जो ट्रावणकोर कोचीन क्षेत्र में पुराने मद्रास प्रेसीडेंसी के मालाबार जिले को मिलाकर बनाया गया।
- बम्बई, मद्रास, हैदराबाद व कुर्ग के कुछ कन्नड़ भाषी क्षेत्रों को मैसूर रियासत में मिला दिया गया।
- बम्बई, राज्य का विस्तार कर उसमें कच्छ व सौराष्ट्र की रियासतों के साथ-साथ हैदराबाद रियासत के मराठी भाषी इलाकों को शामिल कर लिया गया। मराठी नागपुर डिवीजन भी सम्मिलित किया गया।

इस अधिनियम के द्वारा निम्नांकित राज्य एवं संघ शासित प्रदेश बनाए गए:-

1. आन्ध्र प्रदेश
2. असम
3. बिहार-कुछ क्षेत्रों का अन्तरण पश्चिम बंगाल में किया गया।
4. बम्बई-उपर्युक्त क्षेत्रों को जोड़ा गया जबकि राज्य के दक्षिणतम जिला बना मैसूर को दिये गये। 1960 ई. में महाराष्ट्र व गुजरात में विभाजन।
5. जम्मू एवं कश्मीर
6. केरल
7. मध्य प्रदेश-मध्य भारत, विंध्य प्रदेश व भोपाल राज्य को मिलाकर बना जबकि मराठी-भाषी नागपुर डिवीजन बम्बई प्रान्त में सम्मिलित किया गया।
8. मैसूर-इसमें कुर्ग जिला के अतिरिक्त दक्षिण बम्बई के कन्नड़भाषी क्षेत्र व पश्चिमी हैदराबाद के कन्नड भाषी क्षेत्र भी शामिल करके क्षेत्र विस्तार किया गया। 1973 ई. में मैसूर का नाम बदलकर 'कर्नाटक' कर दिया गया।
9. उड़ीसा
10. मद्रास-पूर्ववर्ती मद्रास रियासत में मालाबार क्षेत्र निकालकर केरल में सम्मिलित कर दिया गया। ट्रावणकोर-कोचीन से दक्षिण जिला कन्याकुमारी निकालकर मद्रास में सम्मिलित, 1964 में मद्रास का नाम बदलकर तमिलनाडु कर दिया गया।
11. पंजाब-पटियाला व पूर्वी पंजाब राज्य संघ का विलय कर क्षेत्र विस्तार किया गया।
12. राजस्थान-अजमेर का विलय व बम्बई एवं मध्य भारत राज्यों से कुछ क्षेत्र शामिल कर क्षेत्र विस्तार किया गया।
13. उत्तर प्रदेश व
14. पश्चिम बंगाल।

संघ शासित क्षेत्र

यद्यपि राज्य पुनर्गठन आयोग ने सिर्फ तीन संघ शासित प्रदेशों की संस्तुति की थी, राज्य पुनर्गठन अधिनियम-1956 द्वारा निम्नलिखित 6 संघ शासित क्षेत्र बनाए गए:-

1. अंडमान व निकोबार द्वीप समूह
2. दिल्ली
3. हिमाचल प्रदेश
4. लक्षद्वीप, मिनिकॉय व अमनदीवी द्वीपसमूह-यह मद्रास राज्य से अलग करके बनाया गया था। इसका नाम बदलकर 1973 ई. में लक्षद्वीप कर दिया गया।
5. मणिपुर
6. त्रिपुरा।

निर्माण IAS